संकीर्तनके समय मुक्तकण्ठसे भगवान्‌के नामोंका घोष करना चाहिये। ज्ञान, विद्वत्ता, पद, धन आदिके अभिमानमें चुप नहीं बैठ रहना चाहिये। खड़ा कीर्तन होता हो तो संकोच छोड़कर खड़े हो जाना चाहिये। कहीं हमारे किसी आचरणसे भगवन्नामसंकीर्तनका अपमान न हो जाय। परंतु नाचना चाहिये प्रेमावेश होनेपर ही, लोग-दिखाऊ नहीं। कलाका नृत्य दूसरी चीज है एवं प्रेममय भगवन्नामकीर्तनका दूसरी।

याद रखना चाहिये, भगवन्नामकीर्तन बहुत ही आदरणीय और ऊँचा साधन है। इसका ऊँची-से-ऊँची भावनासे साधन करना चाहिये; ऊँचे-से-ऊँचे आचरणोंसे युक्त होकर कीर्तन करना चाहिये। पवित्र पुरुषोंद्वारा किये हुए भगवन्नामकीर्तनकी ध्वनि जहाँतक पहुँचेगी वहाँतकके समस्त जीवोंका अनायास ही कल्याण हो सकता है।

—स्वामी रामसुखदास
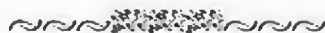
अबिनासी' (मानस, उत्तर० ११७। १)। गुरु उस भूले हुए सम्बन्धकी याद कराता है, कोई नया सम्बन्ध नहीं जोड़ता।

मैं प्रायः यह पूछा करता हूँ कि पहले बेटा होता है कि बाप? इसका उत्तर प्रायः यही मिलता है कि बाप पहले होता है। परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो पहले बेटा होता है, फिर बाप होता है। कारण कि बेटा पैदा हुए बिना उसका बाप नाम होगा ही नहीं। पहले वह मनुष्य (पति) है और जब बेटा जन्मता है, तब उसका नाम बाप होता है। इसी तरह शिष्यको जब तत्त्वज्ञान हो जाता है, तब उसके मार्गदर्शकका नाम 'गुरु' होता है। शिष्यको ज्ञान होनेसे पहले वह गुरु होता ही नहीं। इसीलिये कहा है—

गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥

(गुरुगीता)

अर्थात् 'गु' नाम अन्धकारका है और 'रु' नाम प्रकाशका है, इसलिये जो अज्ञानरूपी अन्धकारको मिटा दे, उसका नाम 'गुरु' है।

गुरुके विषयमें एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, किनके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय॥

गोविन्दको बता दिया, सामने लाकर खड़ा कर दिया, तब गुरुकी बलिहारी होती है। गोविन्दको तो बताया नहीं और गुरु बन गये—यह कोरी ठगाई है! केवल गुरु बन जानेसे गुरुपना सिद्ध नहीं होता। इसलिये अकेले खड़े गुरुकी महिमा नहीं है। महिमा उस गुरुकी है, जिसके साथ गोविन्द भी खड़े हैं—'गुरु गोविन्द दोउ खड़े' अर्थात् जिसने भगवान्‌की प्राप्ति करा दी है।

असली गुरु वह होता है, जिसके मनमें चेलेके कल्याणकी इच्छा हो और चेला वह होता है, जिसमें गुरुकी भक्ति हो—

को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा
शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव।

(प्रश्नोत्तरी ७)

अगर गुरु पहुँचा हुआ हो और शिष्य सच्चे हृदयसे आज्ञापालन करनेवाला हो तो शिष्यका उद्धार होनेमें सन्देह नहीं है।

पारस केरा गुण किसा, पलटा नहीं लोहा।
कै तो निज पारस नहीं, कै बीच रहा बिछोहा॥

अगर पारसके स्पर्शसे लोहा सोना नहीं बना तो वह पारस असली पारस नहीं है अथवा लोहा असली लोहा नहीं है अथवा बीचमें कोई आड़ है। इसी तरह अगर शिष्यको तत्त्वज्ञान नहीं हुआ तो गुरु तत्त्वप्राप्त नहीं है अथवा शिष्य आज्ञापालन करनेवाला नहीं है अथवा बीचमें कोई आड़ (कपटभाव) है।

वास्तविक गुरु

वास्तविक गुरु वह होता है, जिसमें केवल चेलेके कल्याणकी चिन्ता होती है। जिसके हृदयमें हमारे कल्याणकी चिन्ता ही नहीं है, वह हमारा गुरु कैसे हुआ? जो हृदयसे हमारा कल्याण चाहता है, वही हमारा वास्तविक गुरु है, चाहे हम उसको गुरु मानें या न मानें और वह गुरु बने या न बने। उसमें यह इच्छा नहीं होती कि मैं गुरु बन जाऊँ, दूसरे मेरेको गुरु मान लें, मेरे चेले बन जायँ। जिसके मनमें धनकी इच्छा होती है, वह धनदास होता है।

ऐसे ही जिसके मनमें चेलेकी इच्छा होती है, वह चेलादास होता है। जिसके मनमें गुरु बननेकी इच्छा है, वह दूसरेका कल्याण नहीं कर सकता। जो चेलेसे रुपये चाहता है, वह गुरु नहीं होता, प्रत्युत पोता-चेला होता है। कारण कि चेलेके पास रुपये हैं तो उसका चेला हुआ रुपया और रुपयेका चेला हुआ गुरु तो वह गुरु वास्तवमें पोता-चेला ही हुआ! विचार करें, जो आपसे कुछ भी चाहता है, वह क्या आपका गुरु हो सकता है? नहीं हो सकता। जो आपसे कुछ भी धन चाहता है, मान-बड़ाई चाहता है, आदर चाहता है, वह आपका चेला होता है, गुरु नहीं होता। सच्चे महात्माको दुनियाकी गरज नहीं होती, प्रत्युत दुनियाको ही उसकी गरज होती है। जिसको किसीकी भी गरज नहीं होती, वही वास्तविक गुरु होता है।

कबीर जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै तो जगत गुरु वह दास॥

जो सच्चे सन्त-महात्मा होते हैं, उनको गुरु बननेका शौक नहीं होता, प्रत्युत दुनियाके उद्धारका शौक होता है। उनमें दुनियाके उद्धारकी स्वाभाविक सच्ची लगन होती है। मैं भी अच्छे सन्त-महात्माओंकी खोजमें रहा हूँ और मेरेको अच्छे सन्त-महात्मा मिले भी हैं। परन्तु उन्होंने कभी ऐसा नहीं कहा कि तुम चेला बन जाओ तो कल्याण हो जायगा। जिनको गुरु बननेका शौक है, वही ऐसा प्रचार करते हैं कि गुरु बनाना बहुत जरूरी है, बिना गुरुके मुक्ति नहीं होती, आदि-आदि।

कोई वर्तमान मनुष्य ही गुरु होना चाहिये—ऐसा कोई विधान नहीं है। श्रीशुकदेवजी महाराज हजारों वर्ष पहले हुए थे, पर उन्होंने चरणदासजी महाराजको दीक्षा दी! सच्चे शिष्यको गुरु अपने-आप

दीक्षा देता है। कारण कि चेला सच्चा होता है तो उसके लिये गुरुको ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं होती, प्रत्युत गुरु अपने-आप मिलता है। सच्ची लगनवालेको सच्चा महात्मा मिल जाता है—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

(मानस, बाल० २५९। ३)

लोग तो गुरुको ढूँढ़ते हैं, पर जो असली गुरु होते हैं, वे शिष्यको ढूँढ़ते हैं। उनके भीतर विशेष दया होती है। जैसे, संसारमें माँका दर्जा सबसे ऊँचा है। माँ सबसे पहला गुरु है। बच्चा माँसे ही जन्म लेता है, माँका ही दूध पीता है, माँकी ही गोदीमें खेलता है, माँसे ही पलता है, माँके बिना बच्चा पैदा हो ही नहीं सकता, रह ही नहीं सकता, पल भी नहीं सकता। माँ तो वर्षोंतक बच्चेके बिना रही है। बच्चेके बिना माँको कोई बाधा नहीं लगी। इतना होते हुए भी माँका स्वभाव है कि वह आप तो भूखी रह जायगी, पर बच्चेको भूखा नहीं रहने देगी। वह खुद कष्ट उठाकर भी बच्चेका पालन करती है। ऐसे ही सच्चे गुरु होते हैं। वे जिसको शिष्यरूपसे स्वीकार कर लेते हैं, उसका उद्धार कर देते हैं। उनमें शिष्यका उद्धार करनेकी सामर्थ्य होती है। ऐसी बातें मेरी देखी हुई हैं।

एक सन्त थे। वे दूसरेको शिष्य न मानकर मित्र ही मानते थे। उनके एक मित्रको कोई भयंकर बीमारी हो गयी तो वह घबरा गया। दवाइयोंसे वह ठीक नहीं हुआ। उन सन्तने उससे कहा कि तू अपनी बीमारी मेरेको दे दे। वह बोला कि अपनी बीमारी आपको कैसे दे दूँ? सन्तने फिर कहा कि अब मैं कहूँ तो मना मत करना, आड़ मत लगाना; तू आधी बीमारी मेरेको दे दे। उनके मित्रने स्वीकार कर लिया तो उन सन्तने उसकी आधी बीमारी

उसके द्वारा लोगोंकी वही दुर्दशा होती है, जो कपटी मुनिके द्वारा राजा प्रतापभानुकी हुई थी (देखें—मानस, बाल० १५३-१७५)। कल्याण तो उनके संगसे होता है, जिनके भीतर सबका कल्याण करनेकी भावना है। दूसरेके कल्याणके सिवाय जिनके भीतर कोई इच्छा नहीं है। जो स्वयं इच्छारहित होता है, वही दूसरेको इच्छारहित कर सकता है। इच्छावालेके द्वारा ठगाई होती है, कल्याण नहीं होता।

यह सिद्धान्त है कि जो दूसरेको कमजोर बनाता है, वह खुद कमजोर होता है। जो दूसरेको समर्थ बनाता है, वह खुद समर्थ होता है। जो दूसरेको चेला बनाता है, वह समर्थ नहीं होता। जो गुरु होता है, वह दूसरेको भी गुरु ही बनाता है। भगवान् सबसे बड़े हैं, इसलिये वे कभी किसीको छोटा नहीं बनाते। जो भगवान्‌के चरणोंकी शरण हो जाता है, वह संसारमें बड़ा हो जाता है। भगवान् सबको अपना मित्र बनाते हैं, अपने समान बनाते हैं, किसीको अपना चेला नहीं बनाते। जैसे, निषादराज सिद्ध भक्त था, विभीषण साधक था और सुग्रीव भोगी था, पर भगवान् रामने तीनोंको ही अपना मित्र बनाया। अर्जुन तो अपनेको भगवान्‌का शिष्य मानते हैं—'**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**' (गीता २। ७), पर भगवान् अपनेको गुरु न मानकर मित्र ही मानते हैं—'**भक्तोऽसि मे सखा चेति**' (गीता ४। ३), '**इष्टोऽसि**' (गीता १८। ६४)। वेदोंमें भी भगवान्‌को जीवका सखा बताया गया है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।*

(मुण्डक० ३। १। १, श्वेताश्वतर० ४। ६)

---

* सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे।
(श्रीमद्भा० ११। ११। ६)

'सदा साथ रहनेवाले तथा परस्पर सखाभाव रखनेवाले दो पक्षी—जीवात्मा और परमात्मा एक ही वृक्ष—शरीरका आश्रय लेकर रहते हैं।'

जो खुद बड़ा होता है, वह दूसरेको भी बड़ा ही बनाता है। जो दूसरेको छोटा बनाता है, वह खुद छोटा होता है। जो वास्तवमें बड़ा होता है, उसको छोटा बननेमें लज्जा भी नहीं आती। क्षत्रियोंके समुदायमें, अठारह अक्षौहिणी सेनामें भगवान् घोड़े हाँकनेवाले बने। अर्जुनने कहा कि दोनों सेनाओंके बीचमें मेरा रथ खड़ा करो तो भगवान् शिष्यकी तरह अर्जुनकी आज्ञाका पालन करते हैं। ऐसे ही पाण्डवोंने यज्ञ किया तो उसमें सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णका पूजन किया गया। परन्तु उस यज्ञमें ब्राह्मणोंकी जूठी पत्तलें उठानेका काम भी भगवान्‌ने किया। छोटा काम करनेमें भगवान्‌को लज्जा नहीं आती। जो खुद छोटा होता है, उसीको लज्जा आती है और भय लगता है कि कोई मेरेको छोटा न समझ ले, कोई मेरा अपमान न कर दे।
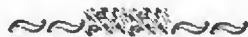
गुरुकी महिमा

वास्तवमें गुरुकी महिमाका पूरा वर्णन कोई कर सकता ही नहीं। गुरुकी महिमा भगवान्‌से भी अधिक है। इसलिये शास्त्रोंमें गुरुकी बहुत महिमा आयी है। परन्तु वह महिमा सच्चाईकी है, दम्भ-पाखण्डकी नहीं। आजकल दम्भ-पाखण्ड बहुत हो गया है और बढ़ता ही जा रहा है। कौन अच्छा है और कौन बुरा—इसका जल्दी पता लगता नहीं। जो बुराई बुराईके रूपमें आती है, उसको मिटाना सुगम होता है। परन्तु जो बुराई अच्छाईके रूपमें आती

है, उसको मिटाना बड़ा कठिन होता है। सीताजीके सामने रावण, राजा प्रतापभानुके सामने कपट मुनि और हनुमान्‌जीके सामने कालनेमि आये तो वे उनको पहचान नहीं सके, उनके फेरेमें आ गये; क्योंकि उनका स्वाँग साधुओंका था। आजकल भी शिष्योंकी अपने गुरुके प्रति जैसी श्रद्धा देखनेमें आती है, वैसा गुरु स्वयं होता नहीं। इसलिये सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका कहते थे कि आजकलके गुरुओंमें हमारी श्रद्धा नहीं होती, प्रत्युत उनके चेलोंमें श्रद्धा होती है! कारण कि चेलोंमें अपने गुरुके प्रति जो श्रद्धा है, वह आदरणीय है।

शास्त्रोंमें आयी गुरु-महिमा ठीक होते हुए भी वर्तमानमें प्रचारके योग्य नहीं है। कारण कि आजकल दम्भी-पाखण्डी लोग गुरु-महिमाके सहारे अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। इसमें कलियुग भी सहायक हैं; क्योंकि कलियुग अधर्मका मित्र है—'**कलिनाधर्ममित्रेण**' (पद्मपुराण, उत्तर० १९३। ३१)। वास्तवमें गुरु-महिमा प्रचार करनेके लिये नहीं है, प्रत्युत धारण करनेके लिये है। कोई गुरु खुद ही गुरु-महिमाकी बातें कहता है, गुरु-महिमाकी पुस्तकोंका प्रचार करता है तो इससे सिद्ध होता है कि उसके मनमें गुरु बननेकी इच्छा है। जिसके भीतर गुरु बननेकी इच्छा होती है, उससे दूसरोंका भला नहीं हो सकता। इसलिये मैं गुरुका निषेध नहीं करता हूँ, प्रत्युत पाखण्डका निषेध करता हूँ। गुरुका निषेध तो कोई कर सकता ही नहीं।

गुरुकी महिमा वास्तवमें शिष्यकी दृष्टिसे है, गुरुकी दृष्टिसे नहीं। एक गुरुकी दृष्टि होती है, एक शिष्यकी दृष्टि होती है और एक तीसरे आदमीकी दृष्टि होती है। गुरुकी दृष्टि यह होती है कि मैंने कुछ नहीं किया, प्रत्युत जो स्वतः-स्वाभाविक वास्तविक

तत्त्व है, उसकी तरफ शिष्यकी दृष्टि करा दी। तात्पर्य हुआ कि मैंने उसीके स्वरूपका उसीको बोध कराया है, अपने पाससे उसको कुछ दिया ही नहीं। चेलेकी दृष्टि यह होती है कि गुरुने मेरेको सब कुछ दे दिया। जो कुछ हुआ है, सब गुरुकी कृपासे ही हुआ है। तीसरे आदमीकी दृष्टि यह होती है कि शिष्यकी श्रद्धासे ही उसको तत्त्वबोध हुआ है।

असली महिमा उस गुरुकी है, जिसने गोविन्दसे मिला दिया है। जो गोविन्दसे तो मिलाता नहीं, कोरी बातें ही करता है, वह गुरु नहीं होता। ऐसे गुरुकी महिमा नकली और केवल दूसरोंको ठगनेके लिये होती है!

गुरुके वचनका महत्त्व

गुरु बनानेसे कल्याण नहीं होता, प्रत्युत गुरुकी बात माननेसे कल्याण होता है; क्योंकि गुरु शब्द होता है, शरीर नहीं—

जो तू चेला देह को, देह खेह की खान।
जो तू चेला सबद को, सबद ब्रह्म कर मान॥

गुरु शरीर नहीं होता और शरीर गुरु नहीं होता—'**न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत**' (श्रीमद्भा० ११। १७। २७)। इसलिये गुरु कभी मरता नहीं। अगर गुरु मर जाय तो चेलेका कल्याण कैसे होगा? शरीरको तो अधम कहा गया है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(मानस, किष्किंधा० ११। २)

अगर किसीका हाड़-मांसमय शरीर गुरु होता है, तो वह अधम होता है, कालनेमि होता है। इसलिये गुरुमें शरीर-बुद्धि करना और शरीरमें गुरु-बुद्धि करना अपराध है। सन्त एकनाथजीके चरित्रमें यह बात बहुत विशेषतासे मिलती है। शास्त्रकी प्रक्रियाके अनुसार पहले तीर्थयात्रा की जाती है, फिर उपासना की जाती है और फिर ज्ञान होता है। परन्तु एकनाथजीके जीवनमें उलटा क्रम मिलता है। उनको पहले ज्ञान हुआ, फिर उन्होंने उपासना की और फिर गुरुजीने तीर्थयात्राकी आज्ञा दी। जब वे तीर्थयात्रामें थे, तब उनके गाँव पैठणका एक ब्राह्मण उनके गुरुजीके पास देवगढ़ पहुँचा और बोला कि 'महाराज! आपके यहाँ जो एकनाथ था, उनके दादा-दादी बहुत

बूढ़े हो गये हैं और एकनाथको याद कर-करके रोते रहते हैं। गुरुजीको सुनकर आश्चर्य हुआ कि एकनाथ मेरे पास इतने वर्ष रहा, पर उसने अपने दादा-दादीके विषयमें कभी कहा ही नहीं! उन्होंने एक पत्र लिखकर उस ब्राह्मणको दिया और कहा वह तीर्थयात्रा करते हुए जब पैठण आयेगा, तब उसको मेरा यह पत्र दे देना। मैंने कहा है, इसलिये वह पैठण जरूर आयेगा। ब्राह्मण पत्र लेकर चला गया। घूमते-घूमते जब एकनाथजी वहाँ पहुँचे तो वे दादा-दादीसे मिलने गाँवमें नहीं गये, प्रत्युत गाँवके बाहर ही ठहर गये। उस ब्राह्मणने जब एकनाथजीको देखा तो उनको पहचान लिया और उनके दादाजीका हाथ पकड़कर उनको एकनाथजीके पास ले चला। संयोगसे एकनाथजी रास्तेमें ही मिल गये। दादाजीने स्नेहपूर्वक एकनाथजीको गलसे लगाया और गुरुजीका पत्र निकालकर कहा कि 'यह तुम्हारे गुरुजीका पत्र है'। यह सुनते ही एकनाथजी गद्गद हो गये। उन्होंने कपड़ा बिछाकर उसके ऊपर पत्र रखा, उसकी परिक्रमा करके दण्डवत् प्रणाम किया, फिर उसको पढ़ा। उसमें लिखा था कि 'एकनाथ, तुम वहीं रहना'। एकनाथजी वहीं बैठ गये। फिर उम्रभर वहाँसे कहीं गये नहीं। वहीं मकान बन गया। सत्संग शुरू हो गया। दादा-दादी उनके पास आकर रहे। फिर कभी गुरुजीसे मिलने भी नहीं गये। विचार करें, गुरु शरीर हुआ कि वचन हुआ? जब गुरुजीका शरीर शान्त हो गया तो वे बोले कि 'गुरु मरे और चेला रोये तो दोनोंको क्या ज्ञान मिला?' तात्पर्य है कि गुरु मरता नहीं और चेला रोता नहीं।

एकनाथजीके चरित्रमें जैसी गुरुभक्ति देखनेमें आती है, वैसी और किसी सन्तके चरित्रमें देखनेमें नहीं आती। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धपर उन्होंने मराठीमें जो टीका लिखी है, उसके

प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उन्होंने विस्तारसे गुरुकी स्तुति की है। ऐसे परम गुरुभक्त एकनाथजीने भी गुरुसे बढ़कर उनके वचन (आज्ञा) को महत्त्व दिया।

भगवान्‌से लाभ उठानेकी पाँच बातें हैं—नामजप, ध्यान, सेवा, आज्ञापालन और संग। परन्तु सन्त-महात्माओंसे लाभ उठानेमें तीन ही बातें उपयुक्त हैं—सेवा, आज्ञापालन और संग। इसलिये गुरुका नाम-जप और ध्यान न करके उनकी आज्ञाका, उनके सिद्धान्तका पालन करना चाहिये। गुरुके सिद्धान्तके अनुसार अपना जीवन बनाना ही वास्तविक गुरु-पूजन और गुरु-सेवा है। कारण कि सन्त-महात्माओंको शरीरसे भी बढ़कर सिद्धान्त प्यारा होता है। सिद्धान्तकी रक्षाके लिये वे प्राण भी दे देते हैं, पर सिद्धान्त नहीं छोड़ते।

गुरु शरीर नहीं होता, प्रत्युत तत्त्व होता है। अतः सच्चे गुरु अपना पूजन-ध्यान नहीं करवाते, प्रत्युत भगवान्‌का ही पूजन-ध्यान करवाते हैं। सच्चे सन्त अपनी आज्ञाका पालन भी नहीं करवाते, प्रत्युत यही कहते हैं कि गीता, रामायण आदि ग्रन्थोंकी आज्ञाका पालन करो। जो गुरु अपनी फोटो देते हैं, उसको गलेमें धारण करवाते हैं, उसकी पूजा और ध्यान करवाते हैं, वे धोखा देनेवाले होते हैं। कहाँ तो भगवान्‌का चिन्मय पवित्र शरीर और कहाँ हाड़-मांसका जड़ अपवित्र शरीर! जहाँ भगवान्‌की पूजा होनी चाहिये, वहाँ हाड़-मांसके पुतलेकी पूजा होना बड़ा भारी दोष है। जैसे राजासे वैर करनेवाला, उससे विरुद्ध चलनेवाला राजद्रोही होता है, ऐसे ही अपनी पूजा करवानेवाला भगवद्द्रोही होता है। गीताप्रेसके संस्थापक, संचालक और संरक्षक सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे एक सज्जनने कहा कि हम आपकी

गुरु बननेका अधिकार किसको?

गुरुकी महिमा गोविन्दसे भी अधिक बतायी गयी है, पर यह महिमा उस गुरुकी है, जो शिष्यका उद्धार कर सके। श्रीमद्भागवतमें आया है—

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥

(श्रीमद्भा० ५। ५। १८)

'जो समीप आयी हुई मृत्युसे नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।'

इसलिये सन्तोंकी वाणीमें आया है—

चौथे पद चीन्हे बिना शिष्य करो मत कोय।

तात्पर्य है कि जबतक अपनेमें शिष्यका उद्धार करनेकी ताकत न आये, तबतक कोई गुरु मत बनो। कारण कि गुरु बन जाय

और उद्धार न कर सके तो बड़ा दोष लगता है—

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई॥

(मानस, उत्तर० ९९। ४)

वह घोर नरकमें इसलिये पड़ता है कि मनुष्य दूसरी जगह जाकर अपना कल्याण कर लेता, पर उसको अपना शिष्य बनाकर एक जगह अटका दिया! उसको अपना कल्याण करनेके लिये मनुष्यशरीर मिला था, उसमें बड़ी बाधा लगा दी! जैसे एक घरके भीतर कुत्ता आ गया तो घरके मालिकने दरवाजा बन्द कर दिया। घरमें खानेको कुछ था नहीं। अब उस कुत्तेको वहाँ तो कुछ खानेको मिलेगा नहीं और दूसरी जगह जा सकेगा नहीं। यही दशा आजकल चेलेकी होती है। गुरुजी खुद तो चेलेका कल्याण कर सकते नहीं और दूसरी जगह जाने देते नहीं। वह कहीं और चला जाय तो उसको धमकाते हैं कि मेरा चेला होकर दूसरेके पास जाता है! श्रीकरपात्रीजी महाराज कहते थे कि जो गुरु अपना शिष्य तो बना लेता है, पर उसका उद्धार नहीं करता, वह अगले जन्ममें कुत्ता बनता है और शिष्य चींचड़ बनकर उसका खून चूसते हैं!

मन्त्रिदोषश्च राजानं जायादोषः पतिं यथा।
तथा प्राप्नोत्यसन्देहं शिष्यपापं गुरुं प्रिये॥

(कुलार्णवतन्त्र)

'जिस प्रकार मन्त्रीका दोष राजाको और स्त्रीका दोष पतिको प्राप्त होता है, उसी प्रकार निश्चय ही शिष्यका पाप गुरुको प्राप्त होता है।'

दापयेत् स्वकृतं दोषं पत्नी पापं स्वभर्तरि।
तथा शिष्यार्जितं पापं गुरुमाप्नोति निश्चितम्॥

(गन्धर्वतन्त्र)

'जैसे स्त्रीका दोष और पाप उसके स्वामीको प्राप्त होता है, वैसे ही शिष्यका अर्जित पाप गुरुको अवश्य ही प्राप्त होता है।'

एक सन्तके पूर्वजन्मकी सच्ची घटना है। पूर्वजन्ममें वे एक राजाके मन्त्री थे। उनको वैराग्य हो गया तो वे सब छोड़कर अच्छे विरक्त सन्त बन गये। उनके पास कई साधु आकर रहने लगे। राजाके मनमें भी विचार आया कि मैं इन मन्त्री महाराजको ही गुरु बना लूँ और भजन करूँ। वे जाकर उनके शिष्य बन गये। आगे चलकर जब गुरुजी (पूर्व मन्त्री) का शरीर शान्त हो गया तो उनकी जगह उस राजाको महन्त बना दिया गया। महन्त बननेके बाद राजा भोग भोगनेमें लग गया; क्योंकि भोग भोगनेकी पुरानी आदत थी ही। परिणामस्वरूप वह राजा मरनेके बाद नरकोंमें गया। गुरुजी (पूर्व मन्त्री) ऊँचे लोकोंमें गये थे। नरकोंको भोगनेके बाद जब उस राजाने पुनर्जन्म लिया, तब उसके साथ गुरुजीको भी जन्म लेना पड़ा। फिर गुरुजीने उनको पुनः भगवान्‌में लगाया, पर उनको शिष्य नहीं बनाया, प्रत्युत मित्र ही बनाया। उम्रभरमें उन्होंने किसीको भी शिष्य नहीं बनाया। इस घटनासे सिद्ध होता है कि अगर गुरु अपने शिष्यका उद्धार न कर सके तो उसको शिष्यके उद्धारके लिये पुनः संसारमें आना पड़ता है। इसलिये गुरु उन्हींको बनना चाहिये, जो शिष्यका उद्धार कर सकें।

आजकलके गुरु चेलेको भगवान्‌की तरफ न लगाकर अपनी तरफ लगाते हैं, उनको भगवान्‌का न बनाकर अपना बनाते हैं। यह बड़ा भारी अपराध है*। एक जीव परमात्माकी तरफ जाना

---

* पाप और अपराधमें फर्क होता है। पापका फल (नरक आदि) भोगनेसे पाप नष्ट हो जाता है, पर जिसका अपराध किया है, उसकी प्रसन्नताके बिना अपराध नष्ट नहीं होता। इसलिये अपराध पापसे भी ज्यादा भयंकर होता है।

चाहता है, उसको अपना चेला बना लिया तो अब वह गुरुमें अटक गया। अब वह भगवान्‌की तरफ कैसे जायगा? गुरु भगवान्‌की तरफ जानेमें रुकावट डालनेवाला हो गया! गुरु तो वह है, जो भगवान्‌के सम्मुख कर दे, भगवान्‌में श्रद्धा-विश्वास करा दे; जैसे—हनुमान्‌जीने विभीषणका विश्वास अपनेमें न कराकर भगवान्‌में कराया—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

(मानस, सुन्दर० ७)

श्रीशरणानन्दजी महाराजने लिखा है—

'जो उपदेष्टा भगवद्‌विश्वासकी जगहपर अपने व्यक्तित्वका विश्वास दिलाते हैं और भगवत्सम्बन्धके बदले अपने व्यक्तित्वसे सम्बन्ध जोड़ने देते हैं, वे घोर अनर्थ करते हैं।' (प्रबोधनी)

व्यक्तिमें श्रद्धा-विश्वास करनेकी अपेक्षा भगवान्‌में श्रद्धा-विश्वास करनेसे ज्यादा लाभ होगा, जल्दी लाभ होगा और विशेष लाभ होगा। इसलिये जो गुरु अपनेमें विश्वास कराता है, अपनी सेवा कराता है, अपने नामका जप करवाता है, अपने रूपका ध्यान करवाता है, अपनी पूजा करवाता है, अपनी जूठन देता है, अपने चरण धुलवाता है, वह पतनकी तरफ ले जानेवाला है। उससे सावधान रहना चाहिये।

भगवान्‌का ही अंश होनेके कारण मनुष्यमात्रका सदासे ही भगवान्‌के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध स्वतः-स्वाभाविक

है, बनावटी नहीं है। परन्तु गुरुके साथ जोड़ा गया सम्बन्ध बनावटी होता है। बनावटी सम्बन्धसे कल्याण नहीं होता, प्रत्युत बन्धन होता है; क्योंकि संसारके बनावटी सम्बन्धसे ही हम बँधे हैं। आप विचार करें, जिन लोगोंने गुरु बनाया है, क्या उन सबका कल्याण हो गया? उनको तत्त्वज्ञान हो गया? भगवान्‌की प्राप्ति हो गयी? जीवन्मुक्ति हो गयी? किसीको हो गयी हो तो बड़े आनन्दकी बात है, पर हमें विश्वास नहीं होता। एक तो वे लोग हैं, जिन्होंने गुरु बनाया है और दूसरे वे लोग हैं, जिन्होंने गुरु नहीं बनाया है, पर सत्संग करते हैं—उन दोनोंमें आपको क्या फर्क दीखता है? विचार करें कि गुरु बनानेसे ज्यादा लाभ होता है अथवा सत्संग करनेसे ज्यादा लाभ होता है? गुरुजी हमारा कल्याण कर देंगे—ऐसा भाव होनेसे अपने साधनमें ढिलाई आ जाती है। इसलिये गुरु बनानेवालोंमें जितने राग-द्वेष पाये जाते हैं, उतना सत्संग करनेवालोंमें नहीं पाये जाते। किसीको अच्छा संग भी मिल जाय तो वह किसीके साथ लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट नहीं करता, पर अपनेको किसी गुरुका चेला माननेवाले दूसरे गुरुके चेलोंके साथ मार-पीट भी कर देते हैं। गुरु बनानेवालोंमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं दीखता। केवल एक वहम पड़ जाता है कि हमने गुरु बना लिया, इसके सिवाय और कुछ नहीं होता। इसलिये गुरु बनानेसे मुक्ति हो जाती है—यह नियम है ही नहीं।

गुरु बनना और बनाना बड़े जोखिमकी बात है, कोई तमाशा नहीं है। कोई आदमी कपड़ेकी दूकानपर जाय और दूकानदारसे कहे कि मेरेको अमुक कपड़ा चाहिये। दूकानदार उससे कपड़ेका मूल्य तो ले ले, पर कपड़ा नहीं दे तो क्या यह उचित है? अगर कपड़ा नहीं दे सकते थे तो मूल्य क्यों लिया? और मूल्य लिया

तो कपड़ा क्यों नहीं दिया? ऐसे ही शिष्य तो बना ले, भेंट-पूजा ले ले और उद्धार करे नहीं तो क्या यह उचित है? पहले चेला बन जाओ, उद्धार पीछे करेंगे—यह ठगाई है। अपना पूजन करवा लिया, भेंट ले ली, चेला बना लिया और भगवत्प्राप्ति नहीं करायी तो फिर आप गुरु क्यों बने? गुरु बने हो तो भगवत्प्राप्ति कराओ और नहीं कराओ तो आपको गुरु बननेका कोई अधिकार नहीं है। अगर चेलेका कल्याण नहीं कर सकते तो उसको दूसरी जगह जाने दो। खुद कल्याण नहीं कर सकते तो फिर उसको रोकनेका क्या अधिकार है? खुद कल्याण करते नहीं और दूसरी जगह जाने देते नहीं तो बेचारे शिष्यका तो नाश कर दिया! उसका मनुष्यजन्म निरर्थक कर दिया! अब वह अपना कल्याण कैसे करेगा? इसलिये जहाँतक बने, गुरु-शिष्यका सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये। गुरु-शिष्यका सम्बन्ध बिना जोड़े सन्तकी बात मानोगे तो लाभ होगा और नहीं मानोगे तो नुकसान नहीं होगा। तात्पर्य है कि गुरु-शिष्यका सम्बन्ध न जोड़नेमें लाभ-ही-लाभ है, नुकसान नहीं है। परन्तु गुरु-शिष्यका सम्बन्ध जोड़ोगे तो बात नहीं माननेपर नुकसान होगा। कारण कि अगर गुरु असली हो और उसकी एक बात भी टाल दे, उनकी आज्ञा न माने तो वह गुरुका अपराध होता है, जिसको भगवान् भी माफ नहीं कर सकते!

शिवक्रोधाद् गुरुस्त्राता गुरुक्रोधाच्छिवो न हि।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराज्ञां न लङ्घयेत्॥

(गुरुगीता)

'भगवान् शंकरके क्रोधसे तो गुरु रक्षा कर सकता है, पर गुरुके क्रोधसे भगवान् शंकर भी रक्षा नहीं कर सकते। इसलिये सब प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन न करे।'

राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥

(मानस, बाल० १६६। ३)

सच्चे गुरुकी दुर्लभता

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यहृत्तापहारकम्॥

(गुरुगीता)

'शिष्यके धनका हरण करनेवाले गुरु तो बहुत हैं, पर शिष्यके हृदयका ताप हरण करनेवाले गुरु दुर्लभ हैं।'

गीताने प्राणिमात्रके हितमें प्रीतिकी बात कही है—'**सर्वभूतहिते रताः**' (५। २५, १२। ४)। सच्चे सन्तोंकी दृष्टि प्राणियोंके हितकी तरफ रहती है, उनको अपनी तरफ खींचनेकी नहीं। वे न तो किसीको अपना चेला बनाते हैं, न अपनी टोली बनाते हैं और न किसीसे कुछ लेते हैं, प्रत्युत दूसरेका कल्याण कैसे हो—इस तरफ दृष्टि रखते हैं और केवल शिष्योंके लिये ही नहीं, प्रत्युत प्राणिमात्रके कल्याणके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

कारण कि वे भुक्तभोगी होते हैं। अतः वे जानते हैं कि संसारमें कितना दुःख है और संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेमें कितना सुख है। इसलिये वे चाहते हैं कि दूसरे लोग भी संसारके दुःखोंसे छूट जायँ और सदाके लिये परम सुखका अनुभव कर लें।

इस जमानेमें सच्चे सन्त-महात्मा देखनेको नहीं मिलते। सच्चे महात्मा पहले जमानेमें भी बहुत कम थे, वर्तमानमें तो विशेष

कम हो गये हैं। वर्तमानमें तो गुरु बननेका एक पेशा (व्यवसाय) ही बन गया है। चेला इसलिये बनाते हैं कि अपनी जीविका चलती रहे, अपनी मनमानी होती रहे, अपनी मान-बड़ाई (शरीरका मान और नामकी बड़ाई) होती रहे, अपना स्वार्थ सिद्ध होता रहे। यही भाव चेलोंका भी रहता है!

गुरु लोभी सिष लालची, दोनों खेले दाँव।
दोनों डूबा 'परसराम', बैठ पथरकी नाँव॥

आजकल नकली चीजोंका जमाना है। ब्राह्मण भी नकली, क्षत्रिय भी नकली, वैश्य भी नकली, शूद्र भी नकली, ब्रह्मचारी भी नकली, गृहस्थ भी नकली, वानप्रस्थ भी नकली, साधु भी नकली, यहाँतक कि साग-सब्जी, फूल-पत्ती, मिर्च-मसाले, दूध आदि भी नकली मिलते हैं। हर चीज नकली है तो गुरु भी नकली हैं—

मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥

(मानस, उत्तर० ९८। २, ४)

साधु होनेमात्रसे कल्याण नहीं होता। मैंने खुद साधु होकर देखा है। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवालोंको किसी मनुष्यके फेरमें नहीं आना चाहिये, किसीको गुरु नहीं बनाना चाहिये।

वास्तवमें कल्याण, मुक्ति, तत्त्वज्ञान, परमात्मप्राप्ति गुरुके अधीन नहीं है। अगर बिना गुरु बनाये तत्त्वज्ञान नहीं होता तो सृष्टिमें जो सबसे पहला गुरु रहा होगा, उसको तत्त्वज्ञान कैसे हुआ होगा? अगर बिना किसी मनुष्यको गुरु बनाये उसको तत्त्वज्ञान हो गया तो इससे सिद्ध हुआ कि बिना किसी मनुष्यको गुरु बनाये भी जगद्गुरु भगवान्‌की कृपासे तत्त्वज्ञान हो सकता है। परन्तु

आजकल तो ऐसी प्रथा चल रही है कि पहले चेला बनो, गुरुमन्त्र लो, पीछे उपदेश देंगे। ऐसी दशामें गुरु बनानेपर चेलेकी बड़ी दुर्दशा होती है। भाव बैठता नहीं, लाभ भी दीखता नहीं, भीतरका भ्रम भी मिटता नहीं और छोड़कर दूसरी जगह जा सकते नहीं। मेरेसे कोई सम्मति ले तो मैं कहूँगा कि सत्संग करो और जितना ले सको, उतना लाभ लो, पर किसीको गुरु मत बनाओ। जहाँ-जहाँसे अच्छी बातें मिलें, वहाँ-वहाँसे उनको लेते रहो और जहाँ अच्छी बात न मिले, वहाँसे चल दो। गुरु बनाकर बँधो मत।

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत्।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत्॥

(गुरुगीता)

'मधुका लोभी भ्रमर जैसे एक पुष्पसे दूसरे पुष्पकी ओर जाता है, ऐसे ही ज्ञानका लोभी शिष्य एक गुरुसे दूसरे गुरुकी ओर जाय।'

गुरु बनानेके बाद आगे जाकर न जाने क्या दशा होगी! मेरेसे ऐसे कई आदमी मिले हैं, जिन्होंने अपनी दृष्टिसे अच्छे-अच्छे गुरु बनाये, पर पीछे उनपर अश्रद्धा हो गयी। अतः जो अपना कल्याण चाहता है, उसको किसीसे भी सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये। संसारसे सम्बन्ध जोड़नेवाला अपना ही कल्याण नहीं कर सकता, फिर दूसरेका कल्याण कैसे करेगा?

आजकल असली गुरु मिलना बहुत कठिन है। जो ठीक तत्त्वको जाननेवाला हो, ऐसा देखनेमें नहीं आता। जो स्वयं तत्त्वको नहीं जानता, वह शिष्यको क्या बतायेगा? ठीक तत्त्वको जाननेवाले गुरु पहले भी बहुत कम हुए हैं। पहले हो चुके सन्तोंकी पुस्तकें पढ़ते हैं तो उनसे भी हमें पूरा सन्तोष नहीं होता।

सबसे बढ़कर सन्त वे होते हैं, जिनमें मतभेद नहीं होता अर्थात् द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि किसी एक मतका आग्रह नहीं होता। इसलिये साधकके लिये सबसे बढ़िया बात यही है कि वह सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाय। किसी व्यक्तिको न पकड़कर परमात्माको पकड़े। व्यक्तिमें पूर्णता नहीं होती। पूर्णता परमात्मामें होती है। हम सच्चे हृदयसे परमात्माके सम्मुख हो जायँ तो वे योग, ज्ञान, भक्ति—सब कुछ दे देते हैं*।

* तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ (गीता १०। १०-११)

'उन नित्य-निरन्तर मुझमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक मेरा भजन करनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे उनको मेरी प्राप्ति हो जाती है।'

'उन भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उनके स्वरूप (होनेपन) में रहनेवाला मैं उनके अज्ञानजन्य अन्धकारको देदीप्यमान ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

मनुष्यका जन्मजात गुरु—विवेक

एक मार्मिक बात है कि जगद्‌गुरु भगवान् अपनी प्राप्तिके लिये मनुष्यशरीर देते हैं तो साथमें विवेकरूपी गुरु भी देते हैं। भगवान् अधूरा काम नहीं करते। जैसे बड़े अफसरोंको मकान, नौकर, मोटर आदि सब सुविधाएँ मिलती हैं, ऐसे ही भगवान् मनुष्यशरीरके साथ-साथ कल्याणकी सब सामग्री भी देते हैं। वे मनुष्यको 'विवेक'-रूपी गुरु देते हैं, जिससे वह सत् और असत्, कर्तव्य और अकर्तव्य, ठीक और बेठीक आदिको जान सकता है। इस विवेकसे बढ़कर कोई गुरु नहीं है। जो अपने विवेकका

आदर करता है, उसको अपने कल्याणके लिये बाहरी गुरुकी जरूरत नहीं पड़ती। जो अपने विवेकका आदर नहीं करता, वह बाहरी गुरु बनाकर भी अपना कल्याण नहीं कर सकता। इसलिये बाहरी गुरु बनानेपर भी कल्याण नहीं होता।

मनुष्य जितना-जितना विवेकको महत्त्व देता है, उसको काममें लाता है, उतना-उतना उसका विवेक बढ़ता जाता है और बढ़ते-बढ़ते वही विवेक तत्त्वज्ञानमें परिणत हो जाता है। विवेकका आदर गुरु बनानेसे नहीं होता, प्रत्युत सत्संगसे होता है—*'बिनु सतसंग बिबेक न होई'* (मानस, बाल० ३।४)। अच्छे सन्त-महात्मा शिष्य नहीं बनाते तो भी उनका सत्संग करनेसे उद्धार हो जाता है। उनके आचरणोंसे शिक्षा मिलती है, उनकी वाणीसे शास्त्र बनते हैं। अतः जहाँ अच्छा सत्संग मिले, अपने उद्धारकी बात मिले, वहाँ सत्संग करना चाहिये, पर जहाँतक बने, गुरु-शिष्यका सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये।

मेवाड़के राजाके चाचा थे—महाराज चतुरसिंहजी। वे सत्संग सुनते और उसमें कोई बढ़िया बात मिलती तो सुनते ही वहाँसे चल देते कि अब इस बातको काममें लाना है। वे ऐसा निर्णय कर लेते कि अब यह बात हमारी उम्रसे नहीं निकलेगी। ऐसा करनेसे वे अच्छे सन्त हो गये। उन्होंने अनेक अच्छे ग्रन्थोंकी रचना की और वे मेवाड़ी भाषाके वाल्मीकि कहलाये। इस तरह आपको जो भी अच्छी बात मिले, उसको ग्रहण करते जाओ तो आप भी सन्त हो जाओगे।

कल्याणमें शिष्यकी मुख्यता

गुरुजी किसी गद्दीके महन्त हों, उनके पास लाखों-करोड़ों रुपये हों तो उनसे रुपये प्राप्त करनेमें गुरुकी मुख्यता है। गुरु चेलेको स्वीकार करेगा, तभी चेलेको धन मिलेगा। गुरुकी मरजीके बिना चेला उनसे धन नहीं ले सकेगा। इस प्रकार धनकी प्राप्तिमें तो गुरुकी मुख्यता है, पर कल्याण और विद्याकी प्राप्तिमें चेलेकी ही मुख्यता है। अगर चेलेमें अपने कल्याणकी भूख न हो तो गुरु उसका कल्याण नहीं कर सकता। परन्तु चेलेमें अपने कल्याणकी भूख हो तो गुरुके द्वारा उसको स्वीकार न करनेपर भी वह अपना कल्याण कर लेगा।

स्वामी रामानन्दजी महाराजने कबीरको शिष्य बनानेसे मना कर दिया तो वे एक दिन पंचगंगा घाटकी सीढ़ियोंपर लेट गये। रामानन्दजी महाराज स्नानके लिये वहाँसे गुजरे तो अनजानमें उनका पैर कबीरपर पड़ गया और वे 'राम-राम' बोल उठे। कबीरने 'राम'-नामको ही गुरुमन्त्र मान लिया और साधनामें लग गये। परिणाममें कबीर सन्तोंमें चक्रवर्ती सन्त हुए! द्रोणाचार्यजीने एकलव्यको शिष्यरूपसे स्वीकार नहीं किया तो उसने द्रोणाचार्यकी प्रतिमा बनाकर और उनको गुरु मानकर धनुर्विद्याका अभ्यास शुरू कर दिया। परिणाममें वह अर्जुनसे भी तेज हो गया! अतः गुरु बनानेसे ही कल्याण होगा—यह बात है ही नहीं। अगर ऐसी बात होती तो जिन्होंने गुरु बना लिया, क्या उन सबका कल्याण हो गया? क्या उन सबको भगवान् मिल गये? जिसके उपदेशसे, मार्ग-दर्शनसे हमारा कल्याण हो जाय, वही वास्तवमें हमारा गुरु है, चाहे हम उसको गुरु मानें या न मानें, चाहे वह हमें चेला माने

या न माने और चाहे गुरुको हमारा पता हो या न हो। दत्तात्रेयजीने अपने चौबीस गुरुओंकी बात बतायी तो क्या किसीने आकर उनसे कहा कि तू मेरा चेला है और मैं तेरा गुरु हूँ? गुरु ऐसा बनाना चाहिये कि गुरुको पता ही न चले कि कोई मेरा चेला है!

भगवत्प्राप्ति गुरुके अधीन नहीं

जिसको हम प्राप्त करना चाहते हैं, वह परमात्मतत्त्व एक जगह सीमित नहीं है, किसीके कब्जेमें नहीं है, अगर है तो वह हमें क्या निहाल करेगा? परमात्मतत्त्व तो प्राणिमात्रको नित्य प्राप्त है। जो उस परमात्मतत्त्वको जाननेवाले महात्मा हैं, वे न गुरु बनते हैं, न कोई फीस (भेंट) लेते हैं, प्रत्युत सबको चौड़े बताते हैं। जो गुरु नहीं बनते, वे जैसी तत्त्वकी बात बता सकते हैं, वैसी तत्त्वकी बात गुरु बननेवाले नहीं बता सकते।

सौदा करनेवाले व्यक्ति गुरु नहीं होते। जो कहते हैं कि पहले हमारा शिष्य बनो, फिर हम भगवत्प्राप्तिका रास्ता बतायेंगे, वे मानो भगवान्‌की बिक्री करते हैं। यह सिद्धान्त है कि कोई वस्तु जितने मूल्यमें मिलती है, वह वास्तवमें उससे कम मूल्यकी होती है। जैसे कोई घड़ी सौ रुपयोंमें मिलती है तो उसको लेनेमें दूकानदारके सौ रुपये नहीं लगे हैं। अगर गुरु बनानेसे ही कोई चीज मिलेगी तो वह गुरुसे कम दामवाली अर्थात् गुरुसे कमजोर ही होगी। फिर उससे हमें भगवान् कैसे मिल जायँगे? भगवान् अमूल्य हैं। अमूल्य वस्तु बिना मूल्यके मिलती है और जो वस्तु मूल्यसे मिलती है, वह मूल्यसे कमजोर होती है। इसलिये कोई कहे कि मेरा चेला बनो तो मैं बात बताऊँगा, वहाँ हाथ जोड़ देना

चाहिये! समझ लेना चाहिये कि कोई कालनेमि है! नकली गुरु बने हुए कालनेमि राक्षसने हनुमान्‌जीसे कहा था—

सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु॥

(मानस, लंका० ५७। ४)

उसकी पोल खुलनेपर हनुमान्‌जीने कहा कि पहले गुरुदक्षिणा ले लो, पीछे मन्त्र देना और पूँछमें सिर लपेटकर उसको पछाड़ दिया!

कल्याणकी प्राप्तिमें अपनी लगन कारण

भगवान्‌ने गीतामें स्पष्ट कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ (६। ५)

'अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे; क्योंकि आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

तात्पर्य है कि अपने उद्धार और पतनमें मनुष्य स्वयं ही कारण है, दूसरा कोई नहीं। भगवान्‌ने मनुष्यशरीर दिया है तो अपने कल्याणकी सामग्री भी पूरी दी है। इसलिये अपने कल्याणके लिये दूसरेकी जरूरत नहीं है।

गुरु, सन्त और भगवान् भी तभी उद्धार करते हैं, जब मनुष्य स्वयं उनपर श्रद्धा-विश्वास करता है, उनको स्वीकार करता है, उनके सम्मुख होता है, उनकी आज्ञाका पालन करता है। अगर मनुष्य उनको स्वीकार न करे तो वे कैसे उद्धार करेंगे? नहीं कर सकते। खुद शिष्य न बने तो गुरु क्या करेगा? जैसे, दूसरा व्यक्ति भोजन तो दे देगा, पर भूख खुदकी चाहिये। खुदकी भूख न हो

तो दूसरेके द्वारा दिया गया बढ़िया भोजन भी किस कामका? ऐसे ही खुदकी लगन न हो तो गुरुका, सन्त-महात्माओंका उपदेश किस कामका?

गुरु, सन्त और भगवान्‌का कभी अभाव नहीं होता। अनेक बड़े-बड़े सन्त हो गये, आचार्य हो गये, गुरु हो गये, भगवान्‌के अवतार हो गये, पर अभीतक हमारा उद्धार नहीं हुआ है! इससे सिद्ध होता है कि हमने ही उनको स्वीकार नहीं किया। अतः अपने उद्धार और पतनमें हम ही हेतु हैं। जो अपने उद्धार और पतनमें दूसरेको हेतु मानता है, उसका उद्धार कभी हो ही नहीं सकता।

वास्तवमें मनुष्य आप ही अपना गुरु है—'**आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः**' (श्रीमद्भा० ११। ७। २०)। इसलिये उपदेश अपनेको ही दे। दूसरेमें कमी न देखकर अपनेमें ही कमी देखे और उसको दूर करनेकी चेष्टा करे। वह आप ही अपना गुरु बने, आप ही अपना नेता बने और आप ही अपना शासक बने। तात्पर्य हुआ कि वास्तवमें कल्याण न गुरुसे होता है और न ईश्वरसे ही होता है, प्रत्युत हमारी सच्ची लगनसे होता है। खुदकी लगनके बिना भगवान् भी कल्याण नहीं कर सकते। अगर कर देते तो हम आजतक कल्याणसे वंचित क्यों रहते? न तो गुरुका अभाव है, न सन्त-महात्माओंका अभाव है और न भगवान्‌का ही अभाव है। अभाव हमारी लगनका है। कल्याणकी प्राप्ति न गुरुके अधीन है, न सन्त-महात्माओंके अधीन है और न भगवान्‌के अधीन है। यह तो स्वयंके ही अधीन है। जब हमारी लगनके बिना सर्वशक्तिमान् भगवान् भी हमारा कल्याण नहीं कर सकते, तो फिर मनुष्यमें कितनी शक्ति है कि हमारा कल्याण कर दे? हमारी लगन नहीं होगी तो लाखों-करोड़ों गुरु बना लें तो भी कल्याण

नहीं होगा। अगर हमारे हृदयकी सच्ची लगन होगी तो गुरु भी मिल जायगा, सन्त भी मिल जायँगे, भगवान् भी मिल जायँगे, अच्छी पुस्तकें भी मिल जायँगी, ज्ञान भी मिल जायगा। कैसे मिलेगा, किस तरहसे मिलेगा—यह भगवान् जानें! फल पककर तैयार होता है तो तोता आकर स्वयं उसको चोंच मारता है। ऐसे ही हम सच्चे शिष्य बन जायँ तो सच्चा गुरु खुद हमारे पास आयेगा। शिष्यको गुरुकी जितनी आवश्यकता रहती है, उससे अधिक आवश्यकता गुरुको चेलेकी रहती है! हमारी लगन सच्ची होगी तो कोई कपटी गुरु भी मिल जायगा तो भगवान् छुड़ा देंगे। हमें कोई अटका सकेगा ही नहीं। जिसके भीतर अपने उद्धारकी लगन होती है, वह किसी जगह अटकता (फँसता) नहीं—यह नियम है। सच्चे जिज्ञासुको सच्चा सत्संग मिल जाय तो वह उसको चट पकड़ लेता है।

अगर आप अपना उद्धार चाहते हैं तो उसमें बाधा कौन दे सकता है? और अगर आप अपना उद्धार नहीं चाहते तो आपका उद्धार कौन कर सकता है? कितने ही अच्छे गुरु हों, सन्त हों, पर आपकी इच्छाके बिना कोई आपका उद्धार नहीं कर सकता। अगर आप अपने उद्धारके लिये तैयार हो जाओ तो सन्त-महात्मा ही नहीं, चोर-डाकू भी आपकी सहायता करेंगे, दुष्ट भी आपकी सेवा करेंगे, सिंह, सर्प आदि भी आपकी सेवा करेंगे! इतना ही नहीं, दुनियामात्र आपकी सेवा करनेवाली हो जायगी। मैंने ऐसा कई बार देखा है कि अगर सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लगे हुए व्यक्तिको कोई दुःख देता है तो वह दुःख भी उसकी उन्नतिमें सहायक हो जाता है! दूसरा तो उसको दुःख देनेकी नीयतसे काम करता है, पर उसका भला हो जाता है! इतना ही नहीं, जो
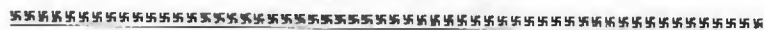
भगवान्‌को नहीं मानता, उसमें भी अगर अपने कल्याणकी लगन पैदा हो जाय तो उसका भी कल्याण हो जाता है।

धनी आदमी काम करनेके लिये नौकर रख लेते हैं, पूजन करनेके लिये ब्राह्मण रख लेते हैं, पर भोजन करने और दवा लेनेके लिये कोई नौकर या ब्राह्मण नहीं रखता। भूख लगनेपर भोजन खुदको ही करना पड़ता है। रोगी होनेपर दवा खुदको ही लेनी पड़ती है। जब रोटी भी खुद खानेसे भूख मिटती है, दवा भी खुद लेनेसे रोग मिटता है, तो फिर कल्याण अपनी लगनके बिना कैसे हो जायगा? आप तत्परतासे भगवान्‌में लग जाओ तो गुरु, सन्त, भगवान्—सब आपकी सहायता करनेके लिये तैयार हैं, पर कल्याण तो खुदको ही करना पड़ेगा। इसलिये गुरु हमारा कल्याण कर देगा—यह पूरी ठगाई है!

माँ कितनी ही दयालु क्यों न हो, पर आपकी भूख नहीं हो तो वह भोजन कैसे करायेगी? ऐसे ही आपमें अपने कल्याणकी उत्कण्ठा न हो तो भगवान् परम दयालु होते हुए भी क्या करेंगे? चीर-हरणके समय द्रौपदीने भगवान्‌को पुकारा तो वे वस्त्ररूपसे प्रकट हो गये, पर जुएमें हारते समय युधिष्ठिरने भगवान्‌को पुकारा ही नहीं तो वे कैसे आयें? युधिष्ठिरने तेरह वर्षोंतक वनमें दुःख पाया। कुन्ती माताने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा कि 'कन्हैया! क्या तेरेको पाण्डवोंपर दया नहीं आती?' भगवान्‌ने कहा कि 'मैं क्या करूँ, युधिष्ठिरने जुएमें राज्य, धन-सम्पत्ति आदि सब कुछ लगा दिया, पर मेरेको याद ही नहीं किया!'

भगवान् सबके गुरु हैं

भगवान् जगत्के गुरु हैं—

'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'

'जगद्गुरुं च शाश्वतम्' (मानस, अरण्य० ४।९)

वे केवल गुरु ही नहीं, प्रत्युत गुरुओंके भी परम गुरु हैं—

'स ईशः परमो गुरोर्गुरुः' (श्रीमद्भा० ८।२४।४८)

'त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्' (गीता ११।४३)

राजा सत्यव्रत भगवान्से कहते हैं—

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृत-
स्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो
वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम्॥

(श्रीमद्भा० ८।२४।५०)

'जैसे कोई अन्धा अन्धेको ही अपना पथ-प्रदर्शक बना ले, वैसे ही अज्ञानी जीव अज्ञानीको ही अपना गुरु बनाते हैं। आप सूर्यके समान स्वयं प्रकाश और समस्त इन्द्रियोंके प्रेरक हैं। हम आत्मतत्त्वके जिज्ञासु आपको ही गुरुके रूपमें वरण करते हैं।'

भक्तराज प्रह्लादजी कहते हैं—

शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः।
तमृते परमात्मानं तात कः केन शास्यते॥

(विष्णुपुराण १।१७।२०)

'हृदयमें स्थित भगवान् विष्णु ही तो सम्पूर्ण जगत्के उपदेशक हैं। हे तात! उन परमात्माको छोड़कर और कौन किसको कुछ सिखा सकता है? नहीं सिखा सकता।'

भगवान् जगत्‌के गुरु हैं और हम भी जगत्‌के भीतर ही हैं। इसलिये वास्तवमें हम गुरुसे रहित नहीं हैं। हम असली महान् गुरुके शिष्य हैं। कलियुगी गुरुओंसे तो बड़ा खतरा है, पर जगद्‌गुरु भगवान्‌से कोई खतरा नहीं है! कोरा लाभ-ही-लाभ है, नुकसान कोई है ही नहीं। इसलिये भगवान्‌को गुरु मानें और उनकी गीताको पढ़ें, उसके अनुसार अपना जीवन बनायें तो हमारा निश्चितरूपसे कल्याण हो जायगा। कृष्ण, राम, शङ्कर, हनुमान्, गणेश, सूर्य आदि किसीको भी अपना गुरु मान सकते हैं। गजेन्द्रने कहा था—

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम्।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भया-
न्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि॥

(श्रीमद्भा० ८। २। ३३)

'जो कोई ईश्वर प्रचण्ड वेगसे दौड़ते हुए अत्यन्त बलवान् कालरूपी साँपसे भयभीत होकर शरणमें आये हुएकी रक्षा करता है और जिससे भयभीत होकर मृत्यु भी दौड़ रही है, उसीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।'

गजेन्द्रके कथनका तात्पर्य है कि ईश्वर कैसा है, उसका क्या नाम है—यह सब मैं नहीं जानता, पर जो कोई ईश्वर है, उसकी मैं शरण लेता हूँ। इस प्रकार हम भी ईश्वरकी शरण हो जायँ तो वह गुरु भेज देगा अथवा स्वयं ही गुरु हो जायगा।

हम भगवान्‌के अंश हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७); अतः हमारे गुरु, माता, पिता आदि सब वे ही हैं। वास्तवमें हमें गुरुसे सम्बन्ध नहीं जोड़ना है, प्रत्युत भगवान्‌से ही सम्बन्ध

जोड़ना है। सच्चा गुरु वही होता है, जो भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ दे। भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिये किसीसे सलाह लेनेकी जरूरत नहीं है। भगवान्‌के साथ जीवमात्रका स्वतन्त्र सम्बन्ध है। उसमें किसी दलालकी जरूरत नहीं है। हम पहले गुरु बनायेंगे, फिर गुरु हमारा सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जोड़े तो भगवान् हमारेसे एक पीढ़ी दूर हो गये! हम पहलेसे ही सीधे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ लें तो बीचमें दलालकी जरूरत ही नहीं। मुक्ति हमारे न चाहनेपर भी जबर्दस्ती आयेगी—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

(मानस, उत्तर० ११९। २)

इसलिये भगवान् गीतामें कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

(गीता ९। ३४, १८। ६५)

'तू मेरा भक्त हो जा, मुझमें मनवाला हो जा, मेरा पूजन करनेवाला हो जा और मुझे नमस्कार कर।'

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

(गीता १८। ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा।'

भगवान् गुरु न बनकर अपनी शरणमें आनेके लिये कहते हैं।
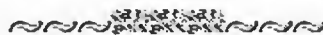
भगवान्‌का विरोध करनेवाले राक्षसोंको भी भगवान्‌से ही बल मिलता है* तो क्या भगवान्‌का भजन करनेवालोंको भगवान्‌से बल नहीं मिलेगा? आप भगवान्‌के सम्मुख हो जाओ तो करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जायँगे†, पर आप सम्मुख ही नहीं होंगे तो पाप कैसे नष्ट होंगे? भगवान् अपने शत्रुओंको भी शक्ति देते हैं, प्रेमियोंको भी शक्ति देते हैं और उदासीनोंको भी शक्ति देते हैं। भगवान्‌की रची हुई पृथ्वी दुष्ट-सज्जन, आस्तिक-नास्तिक, पापी-पुण्यात्मा सबको रहनेका स्थान देती है। उनका बनाया हुआ अन्न सबकी भूख मिटाता है। उनका बनाया हुआ जल सबकी प्यास बुझाता है। उनका बनाया हुआ पवन सबको श्वास देता है। दुष्ट-से-दुष्ट, पापी-से-पापीके लिये भी भगवान्‌की दयालुता समान है। हम घरमें बिजलीका एक लट्टू भी लगाते हैं तो उसका किराया देना पड़ता है, पर भगवान्‌के बनाये सूर्य और चन्द्रने कभी किराया माँगा है? पानीका एक नल लगा लें तो रुपया लगता है, पर भगवान्‌की बनायी नदियाँ रात-दिन बह रही हैं। क्या किसीने उसका रुपया माँगा है? रहनेके लिये थोड़ी-सी जमीन भी लें तो उसका रुपया देना पड़ता है, पर भगवान्‌ने रहनेके लिये इतनी बड़ी पृथ्वी दे दी। क्या उसका किराया माँगा है? अगर उसका किराया माँगें तो किसमें देनेकी ताकत है? जिसकी बनायी हुई सृष्टि भी इतनी उदार है, वह खुद कितना उदार होगा!

---

* हनुमान्‌जी रावणसे कहते हैं—

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥
(मानस, सुन्दर० २१)

† सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
(मानस, सुन्दर० ४४। १)

एक कथा आती है। एक सज्जनने एकादशीका व्रत किया। द्वादशीके दिन किसीको भोजन कराकर पारण करना था, पर कोई मिला नहीं। वर्षा हो रही थी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आखिर एक बूढ़े साधु मिल गये। उनको भोजनके लिये घर बुलाया। उनको बैठाकर उनके सामने भोजनकी पत्तल परोसी तो वे साधु चट खाने लग गये। उन सज्जनने कहा कि 'महाराज, आपने भगवान्‌को भोग तो लगाया ही नहीं!' वह साधु बोला कि 'भगवान् क्या होता है? तुम तो मूर्ख हो, समझते नहीं।' यह सुनते ही उन सज्जनने पत्तल खींच ली और बोले कि 'भगवान् कुछ नहीं होता तो तुम कौन होते हो? हम भगवान्‌के नाते ही तो आपको भोजन कराते हैं।' उसी समय आकाशवाणी हुई कि 'अरे! मेरी निन्दा करते-करते यह साधु बूढ़ा हो गया, पर अभीतक मैं इसको भोजन दे रहा हूँ, तू एक समय भी भोजन नहीं दे सकता और मेरा भक्त कहलाता है! अगर मैं भोजन न दूँ तो यह कितने दिन जीये?' आकाशवाणी सुनकर उनको बड़ी शर्म आयी और फिर उस साधुसे माफी माँगकर उसको प्रेमपूर्वक भोजन कराया।

ऐसो को उदार जग माहीं।

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥

(विनयपत्रिका १६२)

ऐसे परम उदार भगवान्‌के रहते हुए हम दुःख पा रहे हैं और गुरुजी हमें सुखी कर देंगे, हमारा उद्धार कर देंगे—यह कितनी ठगाई है! अपने उद्धारके लिये हम खुद तैयार हो जायँ, बस, इतनी ही जरूरत है।

भगवान् महान् दयालु हैं। वे सबके जीवन-निर्वाहका प्रबन्ध करते हैं तो क्या कल्याणका प्रबन्ध नहीं करेंगे? इसलिये आप

सच्चे हृदयसे अपने कल्याणकी चाहना बढ़ाओ और भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मेरा कल्याण हो जाय, उद्धार हो जाय। मैं नहीं जानता कि कल्याण क्या होता है, पर मैं किसी भी जगह फँसूँ नहीं, सदाके लिये सुखी हो जाऊँ। हे नाथ! मैं क्या करूँ?' भगवान् सच्ची प्रार्थना अवश्य सुनते हैं—

सच्चे हृदयसे प्रार्थना, जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में, वह पहुँच झट ही जाय है॥

हमें अपने कल्याणकी जितनी चिन्ता है, उससे ज्यादा भगवान्‌को और सन्त-महात्माओंको चिन्ता है! बच्चेको अपनी जितनी चिन्ता होती है, उससे ज्यादा माँको चिन्ता होती है, पर बच्चा इस बातको समझता नहीं।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

(मानस, उत्तर० ४७। ३)

जो सच्चे हृदयसे भगवान्‌की तरफ चलता है, उसकी सहायताके लिये सभी सन्त-महात्मा उत्कण्ठित रहते हैं। सन्तोंके हृदयमें सबके कल्याणके लिये अपार दया भरी हुई रहती है। बच्चा भूखा हो तो उसको अन्न देनेका भाव किसके मनमें नहीं आता?

अगर कोई सच्चे हृदयसे अपना कल्याण चाहता है तो भगवान् अवश्य उसका कल्याण करते हैं। भगवान्‌के समान हमारा हित करनेवाला गुरु भी नहीं है—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

(मानस, किष्किंधा० १२। १)

जगद्गुरु भगवान्‌की उदारता

भगवान्‌में अनन्त गुण हैं, जिनका कोई पार नहीं पा सकता। आजतक भगवान्‌के गुणोंका जितना शास्त्रोंमें वर्णन हुआ है,

जितना महात्माओंने वर्णन किया है, वह सब-का-सब मिलकर भी अधूरा है। भगवान्‌के परम भक्त गोस्वामीजी महाराज भी कहते हैं—*'रामु न सकहिं नाम गुन गाई'* (मानस, बाल० २६। ४)। सन्तोंकी वाणीमें भी आया है कि अपनी शक्तिको खुद भगवान् भी नहीं जानते! ऐसे अनन्त गुणोंवाले भगवान्‌में कम-से-कम तीन मुख्य गुण हैं—सर्वज्ञता, सर्वसमर्थता और सर्वसुहृत्ता। तात्पर्य है कि भगवान्‌के समान कोई सर्वज्ञ नहीं है, कोई सर्वसमर्थ नहीं है और कोई सर्वसुहृद् (परम दयालु) नहीं है। ऐसे भगवान्‌के रहते हुए भी आप दुःख पा रहे हैं, आपकी मुक्ति नहीं हो रही है तो क्या गुरु आपको मुक्त कर देगा? क्या गुरु भगवान्‌से भी अधिक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और दयालु है? कोरी ठगाईके सिवाय कुछ नहीं होगा! जबतक आपके भीतर अपने कल्याणकी लालसा जाग्रत् नहीं होगी, तबतक भगवान् भी आपका कल्याण नहीं कर सकते, फिर गुरु कैसे कर देगा?

आपको गुरुमें, सन्त-महात्मामें जो विशेषता दीखती है, वह भी उनकी अपनी विशेषता नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌से आयी हुई और आपकी मानी हुई है। जैसे कोई भी मिठाई बनायें, उसमें मिठास चीनीकी ही होती है, ऐसे ही जहाँ भी विशेषता दीखती है, वह सब भगवान्‌की ही होती है। भगवान्‌ने गीतामें कहा भी है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

(१०। ४१)

'जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ है, उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग अर्थात् सामर्थ्य) के अंशसे उत्पन्न हुई समझो।'

गुरु-विषयक प्रश्नोत्तर

प्रश्न—गुरुके बिना उद्धार कैसे होगा; क्योंकि रामायणमें आया है—*'गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई'* (मानस, उत्तर० ९३। ३)?

उत्तर—उसी रामायणमें यह भी आया है—

गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई॥

(मानस, उत्तर० ९९। ३-४)

तात्पर्य हुआ कि बनावटी गुरुसे उद्धार नहीं होगा। बनाया हुआ गुरु कुछ काम नहीं करेगा। किसी-न-किसी सन्तकी बात मानेंगे, तभी उद्धार होगा और जिसकी बात माननेसे उद्धार होगा, वही हमारा गुरु होगा। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें दत्तात्रेयजीने अपने चौबीस गुरुओंका वर्णन किया है। तात्पर्य है कि मनुष्य किसीसे भी शिक्षा लेकर अपना उद्धार कर सकता है। अतः गुरु बनानेकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत शिक्षा लेनेकी जरूरत है। जिसकी शिक्षा लेनेसे, जिसकी बात माननेसे हमारा उद्धार हो जाय, वह बिना गुरु बनाये भी गुरु हो गया। अगर बात न मानें तो गुरु बनानेपर भी कल्याण नहीं होगा, उलटे पाप होगा, अपराध होगा।

आजकल एक साथ कई लोगोंको दीक्षा दे देते हैं और सामूहिक रूपसे सबको अपना चेला बना लेते हैं। न तो गुरुमें चेलोंके कल्याणकी चिन्ता होती है और न चेलोंमें ही अपने कल्याणकी लगन होती है। गुरु चेलोंका कल्याण कर सकता नहीं और चेले दूसरी जगह जा सकते नहीं। अतः चेले बनाकर उलटे उन लोगोंके कल्याणमें बाधा लगा दी!
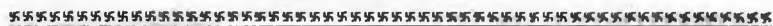
प्रश्न—यह बात प्रचलित है कि निगुरेका कल्याण नहीं होता। अतः गुरु बनाना आवश्यक हुआ?

उत्तर—जिसको अच्छाई-बुराईका ज्ञान है, वह निगुरा कैसे हुआ? अच्छाई-बुराईका ज्ञान (विवेक) सबमें है। भगवान्‌का नाम लेना चाहिये, उनका स्मरण करना चाहिये, किसीको भी दुःख नहीं देना चाहिये आदि बातें सब जानते हैं। इन बातोंका ज्ञान उनको जिससे हुआ, वह गुरु हो गया, चाहे उसको जानें या न जानें, मानें या न मानें।

जिसने गुरु तो बना लिया, पर उनकी बात नहीं मानी, वही निगुरा होता है। उसको अपराध लगता है। जिसने गुरु बनाया ही नहीं, उसको अपराध कैसे लगेगा?

गुरु बनानेसे कल्याण हो ही जायगा—ऐसा कोई विधान नहीं है। कल्याण अपनी लगनसे होता है, गुरु बनानेसे नहीं।

भगवान् जगत्‌के गुरु हैं—'**कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम्।**' आप जगत्‌से बाहर नहीं हैं, फिर आप निगुरे कैसे हुए? इसलिये अच्छे महात्माओंका सत्संग करो और उनकी बातोंको काममें लाओ। गुरु-शिष्यका सम्बन्ध जोड़ना ठीक नहीं है। वास्तवमें जो जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, भगवत्प्रेमी महात्मा होते हैं, वे कल्याणकी बात तो बताते हैं, पर चेला नहीं बनाते। उनको गुरु बनाये बिना उनकी जितनी बातें मानोगे, उतना लाभ तो अवश्य होगा ही, और किसी बातको नहीं मानोगे तो पाप नहीं लगेगा। परन्तु गुरु बनानेपर बात नहीं मानोगे तो पाप ही नहीं, अपराध लगेगा।

प्रश्न—कहते हैं कि गुरुसे मन्त्र लेनेसे उस मन्त्रमें शक्ति आती है?

उत्तर—मन्त्र देनेवालेमें शक्ति होगी, तभी तो उसके दिये मन्त्रमें शक्ति आयेगी। जिसमें खुदमें शक्ति नहीं हो, उसके दिये

मन्त्रमें शक्ति कैसे आयेगी? इसलिये कहा है—

वचन आगले सन्त का, हरिया हस्ती दन्त।
ताख न टूटे भरम का, सैंधे ही बिनु सन्त॥

अर्थात् अनुभवी सन्तका वचन हाथी-दाँतकी तरह होता है, जो अज्ञानरूपी द्वारको तोड़ देता है। हाथी अपने दाँतोंसे किलेका द्वार तोड़ देता है। परन्तु हाथीके बिना केवल उसके दाँतोंसे कोई द्वार तोड़ना चाहे तो नहीं तोड़ सकता। कारण कि वास्तवमें शक्ति हाथीमें है, केवल उसके दाँतोंमें नहीं। ऐसे ही शक्ति सन्तके अनुभवमें है, केवल उसके वचनोंमें नहीं।

आजकल गुरु बननेका, अपने सम्प्रदायकी टोली बनानेका शौक तो है, पर जीवका कल्याण हो जाय—इस तरफ खयाल कम है। अपने सम्प्रदायके अनुसार मन्त्र देनेसे अपनी टोली तो बन जाती है, पर तत्त्वप्राप्तिमें कठिनता होती है। तत्त्वप्राप्ति तब होती है, जब अपनी श्रद्धा, विश्वास, रुचि और योग्यताके अनुसार साधन किया जाय। सभी उपासनाएँ ठीक हैं, पर जो उपासना स्वाभाविक होती है, वह असली होती है और जो की जाती है, वह नकली होती है। आजकल साधन करनेवालोंके सामने बड़ी उलझन आ रही है। गुरुजीने कृष्ण-मन्त्र दे दिया, पर हमारा मन लगता है राम-मन्त्रमें, अब क्या करें? इस विषयमें मेरी प्रार्थना है कि अगर आपकी रुचि, श्रद्धा-विश्वास राम-मन्त्रमें है तो राम-मन्त्रका ही जप करना चाहिये। गुरुजीने दूसरा मन्त्र बताया है तो एक माला उसकी जप सकते हैं, पर अन्य समय अपनी रुचिवाला मन्त्र ही जपना चाहिये। उपासना वही सिद्ध होती है, जिसमें स्वतः-स्वाभाविक रुचि होती है। ऊपरसे भरी हुई उपासना जल्दी सिद्ध नहीं होती।

जिस मन्त्रमें आपका श्रद्धाभाव अधिक होगा, उस मन्त्रमें स्वत: शक्ति आ जायगी। कारण कि मूलमें शक्ति परमात्माकी है, किसी व्यक्तिकी नहीं। अगस्त्य, विश्वामित्र आदि बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंमें जो शक्ति थी, वह उनको गुरुसे प्राप्त नहीं हुई थी, प्रत्युत अपनी तपस्या आदिके कारण भगवान्‌से प्राप्त हुई थी। भगवान्‌की शक्ति सर्वत्र है, नित्य है और सबके लिये है। उसमें किसीका पक्षपात नहीं है, जो चाहे, उस शक्तिको प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न—गुरुके बिना कुण्डलिनी कैसे जगेगी?

उत्तर—कुण्डलिनी जगनेसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, कल्याण नहीं होता, किसी सोयी हुई सर्पिणीको छेड़ दो तो क्या मुक्ति हो जायगी? श्रीशरणानन्दजी महाराजसे किसीने पूछा कि कुण्डलिनीके विषयमें आप क्या जानते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि हम यह जानते हैं कि कुण्डलिनीके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है। कुण्डलिनी सोती रहे अथवा जाग जाय, उससे हमारा क्या मतलब? कुण्डलिनी शरीरमें है, स्वरूपमें नहीं। अत: कुण्डलिनीके जगनेसे साधक शरीरसे अतीत कैसे होगा? शरीरसे अतीत हुए बिना कल्याण कैसे होगा? कल्याण तो शरीरसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर ही होता है।

प्रश्न—कई लोगोंको गुरुके द्वारा कुण्डलिनी-जागरण आदिकी अलौकिक अनुभूतियाँ होती हैं, वह क्या है?

उत्तर—वह चमत्कार तो होता है, पर उससे कल्याण नहीं होता। कल्याण तो जड़ता (शरीर-संसार) से ऊँचा उठनेपर ही होता है।

प्रश्न—हमने गुरुसे कण्ठी तो ले ली, पर अब उनमें श्रद्धा नहीं रही तो क्या कण्ठी उनको वापिस कर दें?

उत्तर—कण्ठी वापिस करनेके लिये मैं कभी नहीं कहता। मैं यही सम्मति देता हूँ कि रोजाना एक माला गुरु-मन्त्रकी फेर लो और बाकी समय जिसमें श्रद्धा हो, उस मन्त्रका जप करो और सत्संग-स्वाध्याय करो।

प्रश्न—पहले गुरु बना लिया, पर अब उनमें श्रद्धा नहीं रही तो उनका त्याग करनेसे पाप तो नहीं लगेगा?

उत्तर—जब आपके मनमें गुरुको छोड़नेकी इच्छा हो गयी, उनसे श्रद्धा हट गयी तो गुरुका त्याग हो ही गया। इसलिये उस गुरुकी निन्दा भी मत करो और उसके साथ सम्बन्ध भी मत रखो।

जिसमें रुपयोंका लोभ हो, स्त्रियोंमें मोह हो, कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान न हो, खराब रास्तेपर चलता हो, ऐसे गुरुका त्याग करनेमें कोई पाप, दोष नहीं लगता। शास्त्रोंमें ऐसे गुरुका त्याग करनेकी बात आती है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥*

(महाभारत, उद्योग० १७८। ४८)

'यदि गुरु भी घमण्डमें आकर कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान खो बैठे और कुमार्गपर चलने लगे तो उसका भी त्याग कर देनेका विधान है।'

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादी विकल्पकः।
स्वविश्रान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम्॥

(सिद्धसिद्धान्तसंग्रह, गुरुगीता)

'ज्ञानरहित, मिथ्यावादी और भ्रम पैदा करनेवाले गुरुका त्याग

---

*यह श्लोक किञ्चित् पाठभेदके साथ वाल्मीकिरामायण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण आदिमें भी आया है।

कर देना चाहिये; क्योंकि जो खुद शान्ति नहीं प्राप्त कर सका, वह दूसरोंको शान्ति कैसे देगा?'

पतिता गुरवस्त्याज्या माता च न कथञ्चन।
गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी॥

(स्कन्दपुराण, मा० कौ० ६। ७; मत्स्यपुराण २२७। १५०)

'पतित गुरु भी त्याज्य है, पर माता किसी प्रकार भी त्याज्य नहीं है। गर्भकालमें धारण-पोषण करनेके कारण माताका गौरव गुरुजनोंसे भी अधिक है।'

प्रश्न—क्या स्त्री किसीको गुरु बना सकती है?

उत्तर—स्त्रीको कोई गुरु नहीं बनाना चाहिये। अगर बनाया हो तो छोड़ देना चाहिये। स्त्रीका पति ही उसका गुरु है। शास्त्रमें आया है—

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः॥

(पद्मपुराण स्वर्ग० ५१। ५१, ब्रह्मपुराण ८०। ४७)

'अग्नि द्विजातियोंका गुरु है, ब्राह्मण चारों वर्णोंका गुरु है, एकमात्र पति ही स्त्रियोंका गुरु है और अतिथि सबका गुरु है।'

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥

(मनुस्मृति २। ६७)

'स्त्रियोंके लिये वैवाहिक विधिका पालन ही वैदिक-संस्कार (यज्ञोपवीत), पतिकी सेवा ही गुरुकुलवास और गृह-कार्य ही अग्निहोत्र कहा गया है।'

स्त्रीको पतिके सिवाय किसी भी पुरुषसे किसी प्रकारका भी सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये। स्त्रियोंसे प्रार्थना है कि वे कभी

किसी साधुके फेरमें न पड़ें। आजकल बहुत ठगी, दम्भ, पाखण्ड हो रहा है। मेरे पास ऐसे पत्र भी आते हैं और भुक्तभोगी स्त्रियाँ भी आकर अपनी बात सुनाती हैं, जिससे ऐसा लगता है कि वर्तमान समयमें स्त्रीके लिये गुरु बनाना अर्थात् किसी भी परपुरुषसे सम्बन्ध जोड़ना अनर्थका मूल है।

साधुको भी चाहिये कि वह किसी स्त्रीको चेली न बनाये। दीक्षा देते समय गुरुको शिष्यके हृदय आदिका स्पर्श करना पड़ता है, जबकि संन्यासीके लिये स्त्रीके स्पर्शका कड़ा निषेध है। श्रीमद्भागवतमें आया है कि हाड़-मांसमय शरीरवाली स्त्रीका तो कहना ही क्या है, लकड़ीकी बनी हुई स्त्रीका भी स्पर्श न करे और हाथसे स्पर्श करना तो दूर रहा, पैरसे भी स्पर्श न करे—

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।

(श्रीमद्भा० ११। ८। १३)

शास्त्रमें यहाँतक कहा गया है—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(मनु० २। २१५)

'मनुष्यको चाहिये कि अपनी माता, बहन अथवा पुत्रीके साथ भी कभी एकान्तमें न रहे; क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं, वे विद्वान् मनुष्यको भी अपनी तरफ खींच लेती हैं।'

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु
योगस्य पारं परमारुरुक्षुः।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो
वदन्ति या निरयद्वारमस्य॥

(श्रीमद्भा० ३। ३१। ३९)

'जो पुरुष योगके परम पदपर आरूढ़ होना चाहता हो अथवा जिसे मेरी सेवाके प्रभावसे आत्मा-अनात्माका विवेक हो गया हो, वह स्त्रियोंका संग कभी न करे; क्योंकि उन्हें ऐसे पुरुषके लिये नरकका खुला द्वार बताया गया है।'

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरे॥

(भर्तृहरिशतक)

'जो वायु-भक्षण करके, जल पीकर और सूखे पत्ते खाकर रहते थे, वे विश्वामित्र, पराशर आदि भी स्त्रियोंके सुन्दर मुखको देखकर मोहको प्राप्त हो गये, फिर जो लोग शाली धान्य (सांठी चावल) को घी, दूध और दहीके साथ खाते हैं, वे यदि अपनी इन्द्रियका निग्रह कर सकें तो मानो विन्ध्याचल पर्वत समुद्रपर तैरने लगा!'

ऐसी स्थितिमें जो जवान स्त्रियोंको अपनी चेली बनाते हैं, उनको अपने आश्रममें रखते हैं, उनका स्वप्नमें भी कल्याण हो जायगा—यह बात मेरेको जँचती नहीं! फिर उनके द्वारा आपका भला कैसे हो जायगा? केवल धोखा ही होगा।

प्रश्न—ऐसा कहते हैं कि जीवन्मुक्त महात्मा भोग भी भोगे तो उसको दोष नहीं लगता। क्या यह ठीक है?

उत्तर—ऐसा सम्भव ही नहीं है। जीवन्मुक्त भी हो जाय और भोग भी भोगता रहे—यह सर्वथा असम्भव बात है। भोग तो साधनकालमें ही छूट जाते हैं, फिर सिद्ध पुरुषको भोग भोगनेकी जरूरत भी क्यों पड़ेगी? ऐसी बातें दम्भी-पाखण्डी लोग ही

अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये फैलाते हैं। इसलिये रामायणमें आया है—

मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥

(मानस, उत्तर० ९८। २, ४)

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर॥

(मानस, उत्तर० १००। १)

बुद्धाद्वैतसतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि।
शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचि भक्षणे॥

'यदि अद्वैत तत्त्वका ज्ञान हो जानेपर भी यथेच्छाचार बना रहा तो फिर अशुद्ध वस्तु (मांस-मदिरा आदि) खानेमें यथेच्छाचारी तत्त्वज्ञ और कुत्तेमें भेद ही क्या रह गया?'

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम्।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥

(स्कन्दपुराण, काशी० पू० ४०। १०७)

'जो संन्यास लेनेके बाद पुनः स्त्रीसंग करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है।'

भोगोंका कारण कामना है और कामनाका सर्वथा नाश होनेपर ही जीवन्मुक्ति होती है। भोगोंकी कामना तो साधककी भी आरम्भमें ही मिट जाती है। अगर किसी ग्रन्थमें ऐसी बात आयी हो कि जीवन्मुक्त भोग भी भोगे तो उसको दोष नहीं लगता, तो यह बात उसकी महिमा बतानेके लिये है, विधि नहीं है। इसका तात्पर्य भोग भोगनेमें नहीं है। जैसे, गीतामें जीवन्मुक्तके लिये आया है कि 'जिसका अहंकृतभाव नहीं है और जिसकी बुद्धि

लिप्त नहीं होती, वह इन सम्पूर्ण प्राणियोंको मारकर भी न मारता है और न बँधता है'* तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जीवन्मुक्त महात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंको मार देता है!

प्रश्न—गुरु बनानेसे वे शक्तिपात करेंगे; अतः गुरु बनाना जरूरी हुआ?

उत्तर—शक्तिपात कोई तमाशा नहीं है। वर्तमानमें शक्तिपातकी बात देखनेको तो दूर रही, पढ़नेको भी प्रायः मिलती नहीं! एक सन्त थे। उनके पीछे एक आदमी पड़ा कि शक्तिपात कर दो। वे सन्त बोले कि शक्तिपात कोई मामूली चीज नहीं है; उसको तुम सह नहीं सकोगे, मर जाओगे। वह पीछे पड़ा रहा कि महाराज, किसी तरह कर दो। सन्तने शक्तिपातका थोड़ा-सा असर डाला तो वह आदमी घबरा गया और चिल्लाने लगा कि मेरे स्त्री-पुत्र, माँ-बाप सब मिट गये! संसार सब मिट गया! मैं कहाँ जाऊँगा? मेरेको बचाओ! तात्पर्य है कि शक्तिपात करनेवाला भी मामूली नहीं होता और उसको सहनेवाला भी मामूली नहीं होता।

प्रश्न—चेला इसलिये बनाते हैं कि कोई ईसाई या मुसलमान न बने; अतः चेला बनानेमें क्या दोष है?

उत्तर—यह बिलकुल झूठी बात है! जो ईसाई या मुसलमान बनना चाहते हैं वे गुरुके पास आयेंगे ही नहीं! अगर चेला न बनानेके कारण कोई ईसाई या मुसलमान बन जाय तो गुरुको दोष नहीं लगेगा। परन्तु उसने चेला बनाकर उसको दूसरी जगह जानेसे रोक दिया और खुद उसका कल्याण नहीं कर सका—यह दोष तो उसको लगेगा ही। चेला बननेसे वह भगवान्‌के शरण न

---

* यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥ (गीता १८। १७)

होकर गुरुके शरण हो गया, भगवान्‌के साथ सम्बन्ध न जोड़कर गुरुके साथ सम्बन्ध जोड़ लिया—यह बड़ा भारी दोष है।

प्रश्न—'गुरु कीजै जान के, पानी पीजै छान के' तो गुरुको जाननेका उपाय क्या है? गुरुकी परीक्षा कैसे करें?

उत्तर—गुरुकी परीक्षा आप नहीं कर सकते। अगर आप गुरुकी परीक्षा कर सकें तो आप गुरुके भी गुरु हो गये! जो गुरुकी परीक्षा कर सके, वह क्या गुरुसे छोटा होगा? परीक्षा करनेवाला तो बड़ा होता है। ऐसी स्थितिमें आपको चाहिये कि किसीको गुरु न बनाकर सत्संग-स्वाध्याय करो और उसमें जो अच्छी बातें मिलें, उनको धारण करो। जिनका संग करनेसे परमात्मप्राप्तिकी लगन बढ़ती हो, दुर्गुण-दुराचार स्वतः दूर होते हों और सद्‌गुण-सदाचार स्वतः आते हों, भगवान्‌की विशेष याद आती हो, भगवान्‌पर श्रद्धा-विश्वास बढ़ते हों, बिना पूछे ही शंकाओंका समाधान हो जाता हो और जो हमसे कुछ भी लेनेकी इच्छा न रखते हों, उन सन्तोंका संग करो। उनसे गुरु-शिष्यका सम्बन्ध जोड़े बिना उनसे लाभ लो। अगर वहाँ कोई दोष दीखे, कोई गड़बड़ी मालूम दे तो वहाँसे चल दो।

वास्तवमें परीक्षा गुरुकी नहीं होती, प्रत्युत अपनी होती है। इस विषयमें एक कहानी है। एक युवावस्थाके राजा थे। उन्होंने अपने राज्यके बड़े-बूढ़े और समझदार आदमियोंको बुलाया और उनसे पूछा कि आप सच्ची बात बताओ कि मेरे दादाजीका राज्य ठीक हुआ या मेरे पिताजीका राज्य ठीक हुआ अथवा मेरा राज्य ठीक हुआ? आपने तीनोंके राज्य देखें हैं तो किसका राज्य श्रेष्ठ हुआ? यह सुनकर सब चुप हो गये। तब उनमेंसे एक बूढ़ा आदमी बोला कि महाराज! हम आपकी प्रजा हैं, आप हमारे

मालिक हो। आपकी बातका निर्णय हम कैसे करें? हम आपकी परीक्षा नहीं कर सकते, पर मेरी बात पूछें तो मैं अपनी बात बता सकता हूँ। राजाने कहा—अच्छा, तुम अपनी बात बताओ। वह बूढ़ा आदमी बोला कि जब आपके दादाजी राज्य करते थे, उस समय मैं बीस-पचीस वर्षका जवान था। हाथमें लाठी रखता था। कुश्ती करना, लाठी चलाना आदि सब मेरेको आता था। एक दिन मैं कहीं जा रहा था तो जंगलमें मैंने किसीके रोनेकी आवाज सुनी। आवाजसे पता चला कि कोई स्त्री रो रही है; क्योंकि स्त्रीका पंचम स्वर होता है, षड्ज स्वर नहीं होता। मैं उधर गया तो देखा कि अच्छे वस्त्रों एवं गहनोंसे सजी एक स्त्री बैठी रो रही है। मैंने पूछा कि तू रो क्यों रही है? तो वह मेरेको देखकर एकदम डर गयी। मैंने उसको आश्वासन दिया कि बेटी, तुम डरो मत, अपनी बात बताओ। उसने बताया कि मैं अपने सम्बन्धियोंके साथ पीहरसे ससुराल जा रही थी। बीचमें सहसा डाकू आ गये और उनके तथा हमारे साथियोंके बीच लड़ाई छिड़ गयी। मैं डरकर जंगलमें भाग गयी। अब मेरेको पता नहीं कि पीछे क्या हुआ? अब मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? मेरेको पता नहीं कि पीहर किधर है और ससुराल किधर है? मैंने उससे ससुरालका गाँव पूछा तो उसने गाँवका नाम बताया। मैंने कहा कि तेरे ससुरालका गाँव नजदीक ही है, मैं तेरेको पहुँचा दूँगा, डर मत। मैंने उसके ससुरका नाम पूछा तो उसने जमीनपर लिखकर बता दिया। मैंने कहा कि मैं तेरे ससुरको जानता हूँ। मैं पहुँचा दूँगा।

रात्रिका समय था। मैं उस स्त्रीको लेकर उसके ससुरके घर पहुँचा। वहाँ सब चिन्ता कर रहे थे कि हम तो डाकुओंके साथ लड़ाईमें लग गये, उन्होंने हमारी बहूको मार डाला होगा! उसका

हजारों रुपयोंका गहना था, उसको लूट लिया होगा! अब उसका पता कैसे मिले? आदि-आदि। अपनी बहूको देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उस स्त्रीने भी घरकी स्त्रियोंसे कहा कि ये पिताकी तरह बड़े स्नेहपूर्वक, आदरपूर्वक मेरेको यहाँ लाये हैं। उन्होंने मेरेसे चार-पाँच सौ रुपये लेनेके लिये आग्रह किया तो मैंने कहा कि रुपयोंके लिये मैंने काम नहीं किया है, कोई मजदूरी नहीं की है, मैंने तो अपना कर्तव्य समझकर काम किया है। उनके बहुत आग्रह करनेपर भी मैंने कुछ लिया नहीं और चला गया। मेरे चित्तमें बड़ी प्रसन्नता रही कि आज मेरेसे एक अबलाकी सेवा बन गयी! यह उस समयकी बात है, जब आपके दादाजी राज्य करते थे।

बहुत समय बीतनेपर मेरे व्यापारमें घाटा लग गया और पैसोंकी बड़ी तंगी हो गयी। तब मेरे मनमें विचार आया कि मैंने बड़ी गलती की कि उस स्त्रीको छोड़ दिया! अगर मैं उसको एक थप्पड़ लगाता तो दस-पन्द्रह हजारका गहना मिल जाता। फिर आज यह तंगी नहीं भोगनी पड़ती। उसके ससुरने रुपये दिये, पर वे भी मैंने नहीं लिये। पर अब क्या हो, बात हाथसे निकल गयी! यह उस समयकी बात है, जब आपके पिताजीका राज्य था। अब तो महाराज! आपके सामने कहनेसे मेरेको शर्म आती है; क्योंकि आप मेरे पोतेकी तरह हो। पर आप पूछते हो तो कहता हूँ। अब मेरे मनमें आती है कि उस स्त्रीको डरा-धमकाकर अथवा फुसलाकर अपनी स्त्री बना लेता तो स्त्री भी आ जाती और गहना भी आ जाता! आज इस अवस्थामें दोनों मेरे काम आते। मैंने अपनी बात कह दी। आपका राज्य कैसा है—यह मैं कैसे कहूँ? राजा समझ गया कि यह बूढ़ा बहुत बुद्धिमान है! अपनी दशा

कहकर बता दिया कि जैसा राजा होता है, वैसी प्रजा होती है—'*यथा राजा तथा प्रजा।*'

तात्पर्य है कि हम गुरुकी परीक्षा तो नहीं कर सकते, पर अपनी परीक्षा कर सकते हैं कि उनका संग करनेसे हमारे भावोंपर क्या असर पड़ा? हमारे आचरणोंपर क्या असर पड़ा? हमारे जीवनपंर क्या असर पड़ा? हमारे राग-द्वेष, काम-क्रोध कितने कम हुए?

प्रश्न—इतिहासमें ऐसे उदाहरण भी आते हैं, जिनसे गुरु बनाना अनिवार्य सिद्ध होता है?

उत्तर—इतिहासके आधारपर सत्यका निर्णय नहीं हो सकता। इतिहासकी बात ठोस नहीं होती, पोली होती है। कारण कि किस व्यक्तिने पूर्वके किस सम्बन्धसे और किस परिस्थितिमें क्या किया और क्यों किया—इसका पूरा पता नहीं चल सकता। इसलिये इतिहासमें आयी अच्छी बातोंसे मार्गदर्शन तो हो सकता है, पर सत्यका निर्णय शास्त्रके विधि-निषेधसे ही हो सकता है। इतिहाससे विधि प्रबल है और विधिसे भी निषेध प्रबल है।

गुरु-सम्बन्धी अधिकतर बातोंका प्रचार उन्हीं लोगोंने किया है, जिनको गुरु बननेका शौक है। अतः वर्तमान कलियुगमें विशेष सावधानीकी जरूरत है।

संन्यासी साधकों और कीर्तनकारोंसे नम्र निवेदन

[यह लेख बहुत पहले 'कल्याण' के ९ वें वर्षमें (संवत् १९९१, सन् १९३४ में) प्रकाशित हुआ था। वर्तमान समयमें इसकी विशेष उपयोगिता देखते हुए इसे यहाँ दिया जा रहा है।]

श्रीपरमात्मदेव तथा उनके भक्तोंकी कृपा और आज्ञासे आज मैं यहाँ संन्यासी साधकोंके आचरण और कीर्तनके सम्बन्धमें उन भावोंको लिखनेकी चेष्टा करता हूँ जो मुझे प्रिय लगते हैं। यद्यपि मैं अपनेको लिखने और इस तरह उपदेश-आदेश देनेका किसी तरह भी अधिकारी नहीं मानता, और न मुझसे ऐसे आचरण पूरी तौरसे बनते ही हैं, तथापि मुझको ऐसे शास्त्रीय तथा संतोंके आदरणीय आचार-विचार कुछ प्रिय मालूम होते हैं, इसीलिये ऐसी चर्चामें समय बिताना अपना अहोभाग्य समझकर कुछ प्रयास कर रहा हूँ। आशा करता हूँ, मेरे अन्यान्य साधक भाई भी ऐसे विचार यदा-कदा प्रकट करेंगे; क्योंकि ऐसा करनेसे मुझ-सरीखे लोगोंको उनके विचार पढ़नेको मिलेंगे और उन भाइयोंका भी कुछ समय सच्चर्चामें बीतेगा। संत-महात्मा तथा शास्त्रोंके वचनोंके अनुसार सत्संगमें सुने हुए और ग्रन्थोंमें पढ़े हुए जो कुछ विचार मैं यहाँ लिखता हूँ, उनमें यदि कोई बात अनुचित हो तो

विज्ञ महानुभाव अपना ही बालक समझकर मुझे क्षमा करनेकी कृपा करेंगे।

साधकको हर्ष, शोक, काम, क्रोध आदिसे अलग रहनेकी पूरी कोशिश करनी चाहिये। कम-से-कम इनके वशीभूत तो कभी नहीं होना चाहिये। उसमें भी मुझ-जैसोंको तो राग-द्वेषस्वरूप कामिनी और काञ्चनसे उसी तरह डरना चाहिये जैसे साधारण लोग भूत, प्रेत, सर्प, व्याघ्रादिसे डरते हैं और यह समझना चाहिये कि जिस क्षण कामिनी-काञ्चनमें संन्यासी साधककी आसक्ति हुई कि बस, उसी क्षण उसका पतन हो गया।

यह कभी नहीं समझना चाहिये कि राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि अन्तःकरणके धर्म हैं। ये धर्म नहीं हैं, विकार हैं। जो इनको अन्तःकरणके धर्म समझ लेता है वह शरीर-नाश होनेतक अन्तःकरण रहनेके कारण इनका भी रहना अनिवार्य मानता है; फलतः वह अपनेको ज्ञानी मानकर भी ऐसा समझ लेता है कि राग-द्वेष, काम-क्रोधादि तो जबतक अन्तःकरण है तबतक रहेंगे ही, मेरा इनसे क्या सम्बन्ध है? वास्तवमें ऐसा समझना भ्रम ही है। जो ऐसा समझता है और राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिसे बचनेकी कोशिश नहीं करता, वह ज्ञानी तो दूर रहा, अच्छा साधक भी नहीं है।

यह निश्चय समझ रखना चाहिये कि सच्चे ज्ञानीमें वस्तुतः काम-क्रोध आदि दोष रहते ही नहीं। जिसे खूब अच्छा बोलना आता है, जो शास्त्रवाक्योंद्वारा ब्रह्मका सुन्दर निरूपण कर सकता है अथवा जो ज्ञानपर अच्छे-अच्छे तर्कप्रधान निबन्ध लिख सकता है, वह ज्ञानी ही है, ऐसा नहीं समझना चाहिये। ये सब बातें तो ग्रन्थोंके पढ़नेसे हो सकती हैं। नाटकमें भी शुकदेवका पार्ट किया

जा सकता है। ज्ञानी तो वह है जो अज्ञानके समुद्रसे सर्वथा तर गया। राग-द्वेष, काम-क्रोधादि अज्ञानमें ही हैं। ज्ञानमें तो इनका लेश भी नहीं।

जो लोग वास्तविक ब्राह्मी स्थितितक पहुँचनेसे पहले ही केवल पुस्तकीय ज्ञानके आधारपर अपनेको ज्ञानी मान बैठते हैं और विधि-निषेधसे मुक्त समझकर साधन छोड़ बैठते हैं, वे प्रायः गिर ही जाते हैं। क्योंकि जबतक अज्ञान है तबतक इन्द्रियोंके भोगोंमें आसक्ति है ही, और पाप होनेमें प्रधान कारण भोगोंकी आसक्ति ही है। फिर, जहाँ काम-क्रोधादि ही अन्तःकरणके अनिवार्य धर्म मान लिये जायँ, वहाँ तो कहना ही क्या? अतएव मुझ-जैसे साधकोंको तो बड़ी ही सावधानीके साथ दुर्गुणोंसे बचते रहनेका पूरा ध्यान रखना चाहिये। अपनेको राग-द्वेष, काम-क्रोध-लोभादि दोषोंसे हरदम बचाते रहना चाहिये। संन्यासाश्रममें तो साधकको कभी भूलकर भी स्त्री और धनके साथ किसी प्रकार भी सम्बन्ध न जोड़ना चाहिये। इनका संग ही न करना चाहिये। जो सिद्ध महापुरुष हैं, उनमें तो कोई ऐसा दोष रह ही नहीं सकता।

यह स्मरण रखना चाहिये कि ढोंगी ज्ञानीकी अपेक्षा अज्ञानी रहना अच्छा है; उसको पापोंसे डर तो रहता है। ढोंगी तो जान-बूझकर ढोंगकी रक्षाके लिये भी पाप करता है। अतएव ढोंगको कभी कल्पनामें भी न आने देना चाहिये; सच्चा संन्यासी बनना चाहिये। और—

यावदायुस्त्वया वन्द्यो वेदान्तो गुरुरीश्वरः।
मनसा कर्मणा वाचा श्रुतेरेवैष निश्चयः॥

(तत्त्वोपदेश ८६)

—आचार्यचरणोंकी इस उक्तिके अनुसार शास्त्रकी विधिको सर्वदा मानते रहना चाहिये। संन्यासीके पालन करनेयोग्य कुछ धर्म ये हैं—गृहस्थोंका संग न करे। स्त्रीकी तो तस्वीर भी न देखे। धनका स्पर्श न करे। किसीके साथ कोई नाता न जोड़े। किसी भी विषयमें ममत्व न करे। मान-बड़ाई स्वीकार न करे। वैराग्यकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करे। इन्द्रियोंको संयममें रखे। वस्तुओंका संग्रह न करे। जमात न बनावे। घर न बाँधे। व्यर्थ न बोले। ब्रह्मचर्य धारण करे। काम-क्रोध-लोभादिसे सदा मुक्त रहे। किसीसे द्वेष न करे। किसीमें राग न करे। नित्य आत्मचिन्तन या भगवत्स्मरणमें ही लगा रहे।

जो संन्यासी अपने इस संन्यास-धर्मका पालन नहीं करता वह प्रायः गिर जाता है। अतएव अपने आश्रमधर्मका पूरा पालन करना चाहिये। विधि-निषेधसे परे पहुँचे हुए महापुरुषोंके द्वारा भी लोकसंग्रहार्थ आदर्श शुभ कर्म ही हुआ करते हैं।

अगर भक्त बननेकी चाह हो तो भगवान्‌के शरण होकर भगवान्‌का सतत भजन करते रहना चाहिये। धन, मान, बड़ाई आदिकी चाहको मनमें न आने देना चाहिये। लोग भक्त समझें या कहें, इस बातकी परवा छोड़ ही देनी चाहिये। भगवान्‌का नाम और गुणकीर्तन प्रेमसे करते रहना चाहिये। जहाँतक बने, अपनी भक्तिको प्रकट नहीं होने देना चाहिये। लोग हमारी पूजा करें, हमारा सम्मान करें, ऐसा अवसर ही नहीं आने देना चाहिये। मान-बड़ाईसे सदा सावधानीसे बचते रहना चाहिये। स्त्रीका और स्त्रीसंगियोंका संग तो कभी नहीं करना चाहिये। धनका लोभ मनमें न आने देना चाहिये। प्रतिष्ठाको तो शूकरीविष्ठा ही समझना चाहिये।
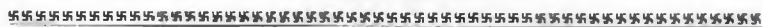
कीर्तन करना चाहिये, खूब कीर्तन करना चाहिये; परंतु करना चाहिये श्रीभगवान्‌के प्रीत्यर्थ, लोकरञ्जनके लिये नहीं। लोकरञ्जनका कीर्तन बाह्य हो जायगा। कीर्तन करनेवालेके मनमें यह दृढ़ भाव निश्चयरूपसे होना चाहिये कि मेरे भगवान् निश्चय ही यहाँ मौजूद हैं और मैं उन्हींके सामने उन्हींके प्रीत्यर्थ उनके नाम-गुण गा रहा हूँ। भगवान्‌के नाम-गुणोंके अर्थका चिन्तन करते हुए—भगवान्‌का ध्यान करते हुए कीर्तनमें मस्त होना चाहिये। यदि ऐसा भाव न हो तो इस प्रकारका अभ्यास ही करना चाहिये। परंतु ऐसा कभी न सोचना चाहिये कि मेरे इस कीर्तनसे लोगोंको—देखने-सुननेवालोंको प्रसन्नता हुई या नहीं, उनका मन मेरी ओर आकर्षित हुआ या नहीं। भगवान्‌के नाममें श्रद्धा कीजिये, प्रेम कीजिये और श्रद्धा तथा प्रेममें सानकर ही भगवान्‌के नामका उच्चारण कीजिये। फिर आपके मुखसे निकला हुआ एक ही नाम चमत्कार उत्पन्न कर देगा। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके श्रीमुखसे निकला हुआ एक ही नाम सुननेवालेको पागल कर देता था; क्योंकि उस नामके साथ श्रीचैतन्यकी प्रेमशक्ति भरी रहती थी।

एक बात और याद रखनी चाहिये। भगवान्‌का कीर्तन करनेवालोंको सदाचारी होना ही चाहिये, दैवी सम्पत्तिवान् बनना ही चाहिये। जो भगवान्‌का नाम लेकर नाचता-गाता है, परंतु जिसके आचरण शुद्ध नहीं हैं, उससे जनतापर अच्छा असर नहीं पड़ता। लोग उसको आदर्श मानकर आचरणोंकी ओर ध्यान नहीं देते, जिससे दूसरे लोगोंको कीर्तन तथा कीर्तन करनेवालोंपर, यहाँतक कि उनके कीर्तनीय भगवान्‌पर भी आक्षेप करनेका अवसर मिल जाता है। अतएव हमें अपनी जिम्मेवारी समझनी

चाहिये। कहीं हमारे आचरणसे पवित्र संकीर्तन और हमारे भगवान्‌पर कोई कलंक न लगाने पाये। वास्तवमें पवित्र संकीर्तन और भगवान्‌पर तो कलंक लग ही नहीं सकता; तथापि कहनेके लिये भी हमारे दोषसे ऐसा क्यों होना चाहिये?

आचरण शुद्ध नहीं है तो भी कीर्तन करना चाहिये, परंतु एकान्तमें। आचरणोंकी शुद्धिके लिये भगवान्‌के सामने रोना चाहिये। भगवान्‌से भीख माँगनी चाहिये। परंतु सावधान! संकीर्तनके नामपर दुराचरणको कभी छिपाना नहीं चाहिये और दुराचारका समर्थन तो किसी भी हालतमें नहीं करना चाहिये।

संकीर्तनके नामपर वर्ण और आश्रमके कर्मोंकी अवहेलना या उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिये। स्वधर्मको पालते हुए ही कीर्तन करना चाहिये। ज्ञानकी, वैराग्यकी, सदाचारकी, वर्णाश्रमधर्मकी और संध्या-गायत्रीकी संकीर्तनके नामपर कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये; बल्कि इनको अवश्यपालनीय समझना चाहिये, इन सबका आदर करना चाहिये और यथायोग्य शास्त्रविधानके अनुसार पालन करना चाहिये।

संकीर्तनके नामपर पक्षपात या भगवान्‌के नामोंमें ऊँच-नीच-बुद्धि और दलबंदी नहीं करनी चाहिये। संकीर्तनका संगठन अवश्य करना चाहिये, परंतु दलबंदी नहीं। सरल पवित्र निष्कपट निष्काम अनन्य प्रेमभावसे भगवान्‌के पवित्र नामोंको स्वयं गाना चाहिये और दूसरोंको ऐसा करनेके लिये प्रेरणा करनी चाहिये। परंतु यथासाध्य उपदेशक, नेता अथवा आचार्य नहीं बनना चाहिये। पूजा, सत्कार, मान, बड़ाई आदिसे सदा अपनेको बचाते रहना चाहिये। धन और स्त्रीके लालचमें तो कभी पड़ना ही नहीं चाहिये।